www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 27 अक्टूबर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 27 अक्टूबर, 2013 से 02 नवम्बर 2013

कार्तिक कृ. –08 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 79, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

आर्य समाज (अनारकली) नई दिल्ली ने मनाया 89वां वार्षिकोत्सव

आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली का 89 वां वार्षिकोत्सव शुक्रवार दिनांक 27 सितम्बर से रविवार 29 सितम्बर 2013 तक उत्साह पूर्वक मनाया गया। वार्षिक उत्सव प्रातः कालीन यज्ञ से प्रारम्भ हुआ तथा ''वैदिक गोष्ठी'' के अन्तर्गत **''वैदिक यज्ञ पद्धति''** विषय पर डॉ. सूर्य देव शास्त्री, (धर्माचार्य डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बसुन्धरा विहार, गाजियाबाद, डॉ. जयेन्द्र (गुरुकुल, नोएडा उ.प्र.) तथा डॉ. वीरेन्द्र अलंकार (प्रोफेसर दयानन्द पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़) ने अपने–अपने सारगर्भित विचार व्यक्त करते हुए यज्ञ भावना की विशद व्याख्या की। सन्ध्यालीन सत्र में श्री सुनील कुमार शर्मा (संगीताचार्य हंसराज माडल स्कूल, पंजाबी बाग, दिल्ली) के सुन्दर भजनों के पश्चात् डॉ. महेश विद्यालंकार ने **''आज के जीवन जगत् को गीता का सन्देश''** विषय पर बोलते हुए गीता में उपदिष्ट ज्ञान–योग कर्म–योग, भक्ति योग तथा जीवन में गीता के महत्व की सुन्दर व्याख्या की।

28 सितम्बर 2013 को प्रातः यज्ञोपरान्त वैदिक प्रवचन आयोजित हुआ जिसका विषय था। ''आज के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा से चरित्र निर्माण''। श्रीमती अनीता मककड़, प्राचार्या डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, गुडगांव तथा श्रीमती चित्रा नाकरा, प्राचार्या डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, विकासपुरी, दिल्ली, ने अपने अनुभव तथा विचार व्यक्त करते हुए चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया और कहा कि चारित्र ठीक होने से जीवन निर्माण स्वतः ही हो जाता है। विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसी सत्र में डॉ. प्रो महावीर, कुलपति उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार है, ने चरित्र निर्माण पर बोलते हुए कहा कि चरित्र निर्माण का विशेष महत्व है। स्व चरित्र से जगत में हर जगह सफलता मिलती है। उन्होंने अनेक दृष्टान्त देकर आज के परिप्रेक्ष्य में चरित्र निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता पर बल दिया। सन्ध्याकालीन सत्र में श्री वीरेन्द्र कुमार (संगीताचार्य–डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल रोहिणी, दिल्ली) के सुन्दर वैदिक भजन हुए और डॉ. महेश विद्यालंकार का गीता प्रवचन हुआ जिससे सभी आर्यजनों ने गीता के सन्देश का विशेष लाभ उठाया।

रविवार 29 सितम्बर–2013 को प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक साप्ताहिक सत्संग के उपरान्त वार्षिक उत्सव का समापन सत्र हुआ जिसमें श्री एस. के शर्मा (संगीताचार्य डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, अशोक विहार, दिल्ली) ने भजन प्रस्तुत किये।

विशेष प्रवचन में आचार्य देवव्रत, अधिष्ठाता, गुरूकुल कुरुक्षेत्र हरियाणा), का प्रभावशाली प्रवचन हुआ जिसका विषय था– **''प्राकृतिक जीवन शैली द्वारा शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति''** आचार्य देवव्रत ने अपनी सरल एवं सरस शैली में समझाते हुए कहा कि प्रकृति के साथ जीवन बिताने से शारीरिक एवं आत्मिक उन्नति तो होती ही है साथ ही हमारा जीवन सुधर जाता है और परमात्मा से प्रीति हो जाती है

आचार्य जी ने खान–पान को लेकर बाजार में उपलब्ध ''चंक फूड'' के दोष बताते हुए अपने आहार को सात्विक, निरामिष तथा पौष्टिक बनाने पर बल दिया। उन्होंने कहा अंकुरित अनाज खायें और स्वस्थ जीवन बिताएं। विशेष प्रवचन के पश्चात् आर्य समाज (अनारकली), आर्य प्रा.प्र. सभा, एवं डी.ए.वी. कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति नई दिल्ली के प्रधान श्री पूनम सूरी जी ने अपने आशीर्वचन से सबको आशर्वाद दिया तथा सबका धन्यवाद किया। वार्षिकोत्सव में आर्य समाज (अनारकली) के प्रधान श्री पूनम सूरी जी डी.ए.वी. प्रबन्धकर्त्री समिति के महामंत्री श्री आर.एस. शर्मा. उप प्रधान श्री डॉ. एस.के. सामा, आर्य प्रा. प्र. सभा के मंत्री श्री एस.के शर्मा, श्री अजय सूरी, आर्य समाज (अनारकली) के मंत्री श्री ए.के. अदलखा , श्री रामनाथ सहगल, श्रीमती मणीसूरी, श्री टी. आर.गुप्ता, आदि समेत अनेक गणमान्य सदस्यों एवं सैकड़ों आर्य नर नारियों ने भाग लिया। शान्ति पाठ के बाद ऋषि लंगर के साथ वार्षिकोत्सव सम्पन्न हुआ।

समापन सत्र पर दस आर्य–सन्यासियों का सम्मान किया गया। तीनों दिन आर्य–समाज अनारकली का सभागार जिज्ञासु श्रोताओं से खचाखच भरा रहा।

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 27 अक्टूबर, 2013 से 02 नवम्बर, 2013

ब्रह्म- क्षत्र की श्री

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इदं मे ब्रह्म च क्षत्र, चोभे श्रियमश्नुताम् ।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां, तस्यै ते स्वाहा ।।

यजु 32.16

ऋषि: श्रीकाम:। देवता देवा: (विद्वांस: राजानश्च)। छन्द: अनुष्टुप् (शङ्क मती)।

● **(मे)** मेरा **(इदं)** यह **(ब्रह्म च क्षतं च)** ब्रह्मण–धर्म और क्षात्र–धर्म **(उभे)** दोनों **(श्रियं)** श्री को **(अश्नुतां)** प्राप्त हों। **(देवा:)** विद्वद्गण और राजा लोग **(मयि)** मेरे अन्दर **(उत्तमां श्रियं)** उत्तम श्री को **(दधतु)** स्थिर करें। **(तस्यै ते)** उस तुझ [श्री] के लिए **(स्वाहा)** स्वागत–वचन (है)।

● प्रत्येक राष्ट्र में ब्रह्म और क्षत्र दोनों का होना आवश्यक है। कोई भी राष्ट्र ज्ञान–विज्ञान के शिक्षक, आस्तिकता और सच्चरित्रता के प्रचारक, धर्म के उद्धारक ब्राह्मणों से धृत तथा राष्ट्र की रक्षा करनेवाले एवं अवसर आने पर राष्ट्र–हितार्थ अपना बलिदान तक कर देनेवाले वीर क्षत्रियों से रक्षित होता है। इन दोनों में से एक के भी अभाव में राष्ट्र का शरीर खड़ा रह सकना कठिन है। बड़े–बड़े बली और सैन्य–शक्ति में अग्रणी राष्ट्र ब्रह्म–बल के अभाव के कारण अपने शक्ति–प्रदर्शन की धुन में दूसरे राष्ट्रों के साथ युद्ध करके नष्ट–भ्रष्ट हो गये। इसके विपरीत अनेक शान्ति प्रिय और ज्ञान–विज्ञान के उपासक–राष्ट्र .आत्म–रक्षा के साधन पास न होने से दूसरे राष्ट्रों द्वारा कवलित कर लिये गये।

राष्ट्र के समान व्यक्ति में भी ब्रह्म अर्थात ज्ञान–विज्ञान, ईश्वर–विश्वास, त्याग, अपरिग्रह आदि का गुण और क्षत्र अर्थात् क्षत से बचने–बचाने का तथा आत्म–रक्षा एवं पर–रक्षा का गुण, दोनों का होना अनिवार्य है। किसी एक के भी न होने पर व्यक्ति में न्यूनता रहती है, जिसके कारण वह उन्नत नहीं हो सकता। अत: मैं भी चाहता हूँ कि मेरे ब्रह्म और क्षत्र दोनों श्री को, उत्कर्ष को, परम शोभा को प्राप्त करें। मेरे राष्ट्र में जो भी देव हैं, धर्मात्मा विद्व दगण हैं, अध्यापक –उपदेशक हैं, राजा और राज्यधिकारी हैं, वे सदुपदेश, शिक्षा और अपने आदर्श चरित्र के उदाहरण से मेरे अन्दर ब्रह्म और क्षत्र की परम श्री को सुदृढ़ रूप से स्थापित करें। ब्रह्म और क्षत्र के समन्वय से उत्पन्न होने वाली श्री मेरे लिए अतिशय स्पृहणीय है, जीवन के उत्कर्ष के लिए अनिवार्य रूप से वरणीय है। हे ब्रह्म–क्षत्र की श्री! तुम आओ, मेरे अन्तरात्मा में प्रवेश करो, तुम्हारा स्वागत है। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

मन की बात करते हुए स्वामी जी ने बताया कि मन एक शक्ति है, जिधर चाहे लगा लो। शक्ति तो बिजली (विद्युत) में भी है जिस से अनेक विध काम लिये गये हैं लेकिन मन तो विद्युत् से भी अधिक शक्ति तथा बल वाला है। जैसे विद्युत को बुद्धि से बांधकर उससे सारी सेवायें ले लीं वैसे मन पर बुद्धि का बंधन लगा तो कोई ऐसा मनोरथ नहीं जिसे पूर्ण नहीं किया जा सकता। बेकाबू बिजली तो भौतिक विनाश ही कर सकती है लेकिन विवश हुआ मन इससे भी अधिक हानि पहुंचा सकता है। यदि मन अधीन हो जाये तो भगवान के दर्शन भी त त्काल हो सकते हैं लेकिन मन पर अधिकार करने का साधन क्या हो?

मन पर अधिकार करने में यदि कोई सक्षम है तो वह है 'प्राण'! प्राण की सक्षमता को सिद्ध किया छान्दोग्योपनिषद् ने। सारी इन्द्रियाँ और मन, संकल्प,चित्त ध्यान, विज्ञान, बल अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मृति, आशा, उत्तरोत्तर एक से बढ़कर दूसरा है लेकिन इन सबसे बढ़कर 'प्राण' है। नाम से लेकर आशा तक सब प्राण में पिरोये हुए उसी प्रकार सक्रिय हैं जैसे पहिए की नाभि में पिरोये हुए अरे।

प्राण ही मन को वश में कर सकता है। क्योंकि यह न तो इन्द्रियों के अधीन है न ही आत्मा अथवा मन के , यह तो निष्काम सेवक है। छान्दोग्योपनिषद् में आई कथा को सुना स्वामी जी ने कहा देवताओं की विजय जब किसी भी इन्द्रिय से न हो सकी तो प्राण ही का आश्रय लेकर उन्होंने असुरों को पराजित किया।

अब आगे

"अब यह जो मुख्य प्राण है इसकी दृष्टि से देवताओं ने ओम् की उपासना की। जब असुर उस प्राण के स्थल में पहुँचे तो असुर इस तरह तितर–बितर हुए जैसे एक मिट्टी का ढेला किसी कठोर पत्थर पर टकराकर चूर–चूर हो जाता है। यह जो मुख में प्राण है, इससे मनुष्य न तो सुगन्ध जानता है, न ही दुर्गन्ध, क्योंकि यह प्राण पाप से बचा हुआ है। इससे मनुष्य जो कुछ खाता है और जो पीता है, उससे दूसरे प्राणियों (इन्द्रियों) की रक्षा होती है।"

नि:स्वार्थ सेवक

सारी इन्द्रियाँ मन–सहित स्वार्थपरायण हैं केवल प्राण ही परार्थी है। प्राण दूसरों के लिए चलता है, दूसरों के लिए खाता है और दूसरों के लिए होता है।

जिस प्रकार सूर्य ब्रह्माण्ड में बिना स्वार्थ के सबको गर्मी तथा प्रकाश देता है, असुरों को भी और देवताओं को भी, पुण्यात्माओं को भी पापियों को भी इसी सूर्य के प्रकाश में संसार के अच्छे और बुरे सब काम होते हैं; परन्तु सूर्य किसी में लिप्त नहीं होता। अलिप्त–शुद्ध रहकर निष्काम भावना से विचरता है। इसी प्रकार यह प्राण मनुष्य–शरीर में सूर्यवत् सब कार्य करता है। जब प्राण इतना बड़ा निष्काम सेवक, परमार्थी और परोपकारी है तो क्या यह हमारे ही काम नहीं आएगा? आएगा और अवश्य आएगा। इतिहास बतलाता है कि जिन्होंने प्राण को अपनाया और इसके द्वारा मन पर विजय प्राप्त करने का यत्न किया, वे इसमें पूर्ण सफल हुए। अंगिरस् और बृहस्पति, अयास्य और दालभ्य के नाम तो छान्दोग्य–उपनिषद् में ही हैं।

अब आपने एक नि:स्वार्थ सच्चे सहायक की खोज तो कर ली, परन्तु प्राण किस प्रकार से चित्त या मन की वृत्तियों का नाश करने में सहायता दे सकेगा, यह अभी निश्चय करना है।

हठयोग प्रदीपिका 4/22 में यह अनुभव बतलाया है कि:

हेतुद्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरण:।
तयोर्विनष्ट एकस्मिस्तौ द्वावपि विनश्यत:।।

'चित्त की प्रवृत्ति में दो हेतु हैं– एक तो वासना अर्थात् भावना नाम का संस्कार और दूसरा प्राण–वायु। वासना और प्राण इन दोनों में से एक के नष्ट होने पर वे दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।'

मन तथा प्राण का एक–दूसरे के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक को रोक लें तो दूसरा भी उनके साथ रूकने लगता है। यह विख्यात भी है

चले वाते चलं चित्तम्।

'प्राण–वायु के चलायमान होने से चित्त भी चलायमान हो जाता है।' महारामायण में भी कहा है कि 'प्राण की क्रिया और वासना ये दोनों चित्त के बीज हैं।'

प्राण के सम्बन्ध में अनुभवियों ने बतलाया है कि हमारे दिल में दिन–रात के 24 घण्टों में एक लाख 13 हजार छ: सौ अस्सी बार धड़कन होती है,

अर्थात् एक मिनट में लगभग 80 बार। श्वास–प्रश्वास धड़कन की अपेक्षा आधे से कम चलते हैं, परन्तु धड़कन का व्यापार प्राण के बिना नहीं होता। अब, जब तक यह गति रुकती नहीं, तब तक मन भी नहीं रुक सकेगा।

योगवासिष्ठ, उपशम प्रकरण, सर्ग 78 में लिखा है :

चित्तं प्राणपरिस्पन्दमाहुरागमभूषणः।
तस्मिन् संरोधिते नूनमुपशान्तं भवेन्मनः।।15।।

'चित्त का परिस्पन्दन (मन की गति) प्राण–परिस्पन्दन के अधीन है, अतः प्राण का निरोध करने पर मन अवश्य उपशान्त (निरुद्ध) हो जाता है।'

'प्रबोध सुधाकर' का यह वचन भी विचारणीय है :

अद्वारतुङ्गकुड्ये गृहेऽवरुद्धो यथा व्याघ्रः।
बहुनिर्गमप्रयत्नैः श्रान्तस्तिष्ठति पतञ्श्वंच तथा।। 75।।
सर्वेन्द्रियावरोधादुद्योगशतैरनिर्गमं वीक्ष्य।
शान्तं तिष्ठति चेतो निरुद्यमत्वं तदा याति।। 96।।
प्राणस्पन्दनिरोधात्संगाद्वासनात्यागात्।
हरिचरणभक्तियोगान्मनः स्ववेगं जहाति शनैः।। 77।।

'द्वार से रहित, ऊँची दीवारवाले घर में, जिस सिंह को बन्द कर दिया गया है, वह बाहर निकलने के बहुत यत्न करने से थक गया है, वह हाँफते हुए गिर पड़ता है। ऐसे ही मन सब इन्द्रियों के बन्द करने से, अनेक उद्योगों से विषयों की ओर जाने का मार्ग न देखकर शान्त हो जाता है और बाहर भागने के उद्यम को छोड़ देता है।। 75–76।। प्राणों की गति को रोक देने से, वासनाओं के त्याग से, प्रभु के चरणों में भक्तियोग से मन अपने वेग को शनैः–शनैः छोड़ देता है।।77।।

प्राण तथा मन का निरोध

प्राण तथा मन के निरोध के लिए दो मुख्य साधन हैं– (1) प्राणायाम, और (2) ध्यान। हठयोग में प्राणायाम पर अधिक बल दिया जाता है और राजयोग में प्राणायाम के साथ ध्यान पर भी बल दिया जाता है। परन्तु दोनों प्रकार के साधनों के लिए एक ही आसन पर अडोल चिरकाल तक बैठने का अभ्यास अनिवार्य है। जब तक एक ही आसन पर ग्रीवा और पीठ सम रखकर तीन–चार घण्टे तक बिना कष्ट के बैठने का अभ्यास नहीं हो जाता, तब तक न तो प्राणायाम सफल हो सकता है, न ही ध्यान–अवस्था में प्राण और मन का निरोध हो सकता है। अतएव सबसे पूर्व एक आसन में निश्चल–अडोल बैठने का अभ्यास करना चाहिए। परन्तु जिसकी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं, जो रोगी रहता है, उसे अपना स्वास्थ्य सुधारने का यत्न करना होगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने खान–पान, स्वभाव तथा व्यवहार को नियमित करना होगा। जो जिह्वा के स्वादाधीन ऐसे पदार्थ खा जाता है जो उसके उदर में नाना व्याधियाँ उत्पन्न कर देते हैं, वह व्यक्ति इस मार्ग पर तो क्या चलेगा, उसके जीवन के तो दूसरे व्यवहार भी नीरस हो जाएँगे।

बिना हाथ–पाँव के परमात्मा सृष्टि की रचना करता कैसे है?

● ओमप्रकाश आर्य

परमात्मा निराकार है। हाथ नहीं। पाँव नहीं। कोई शारीरिक अवयव नहीं। फिर भी उसके द्वारा सृष्टि की संरचना आखिर कैसे होती है?

भगवान् मनु मनुस्मृति में लिखते हैं–
आसीदिदं तमोभूतप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।। मनु.1/5

अर्थात् "यह विश्व (महाप्रलयकाल में) अन्धकार युक्त और लक्षणों से रहित, संकेत के अयोग्य तथा तर्क द्वारा और स्वरूप से जानने के अयोग्य सब ओर से निद्रा की सी दशा में था।"

इससे स्पष्ट होता है कि महाप्रलय में अन्धकार रहता है। वह अन्धकार के लक्षणों से भी रहित होता है। संकेत और तर्क से नहीं जाना जा सकता। सारा विश्व निद्रा के समान रहता है। प्रलयकाल वाणी से अकथनीय होता है। महाप्रलय की अवधि के समाप्त होने पर परमात्मा क्या करता है? यजुर्वेद कहता है–

अर्थात् "यह विश्व (महाप्रलयकाल में) अन्धकार युक्त और लक्षणों से रहित, संकेत के अयोग्य तथा तर्क द्वारा और स्वरूप से जानने के अयोग्य सब ओर से निद्रा की सी दशा में था।"

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी।। – यजुर्वेद – 32.5

अर्थात् "हे मनुष्यो! यस्मात्= जिस परमेश्वर से पुरा= पहले किम् चन= कुछ भी न जातम्= नहीं उत्पन्न हुआ यः= जो सब ओर आबभूव= अच्छे प्रकार से वर्तमान है जिसमें विश्वा= सब भुवनानि= वस्तुओं के आधार सब लोक वर्तमान हैं सः एव= वही षोडशी= सोलह कलावाला प्रजया= प्रजा के साथ सम् रराणः= सम्यक् रमण करता हुआ प्रजापतिः= प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता त्रीणि= तीन ज्योतींषि= तेजोमय बिजली, सूर्य, चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को सचते= संयुक्त करता है।"

सोलह कलाओं वाले परमेश्वर ने प्रजा के साथ रमते हुए अग्नि, विद्युत और सूर्य को बनाया। उपनिषद् के अनुसार आत्मा और परमात्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी बनी है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः
आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी– ये जड़ हैं। इनमें स्वतः बनने–बिगड़ने का गुण नहीं है। इन पंचमहाभूतों से सृष्टि की रचना होती है। सृष्टि की रचना परमात्मा करता है। प्रश्न यह है कि जब परमात्मा निराकार है, उसके हाथ–पाँव नहीं हैं तो वह इस भौतिक सृष्टि की रचना कैसे करता है? इस प्रश्न का उत्तर "वैदिक ढंग से उक्त पुस्तक में पृष्ठ सं. 553 में दिया है। वे लिखते हैं– सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा सर्व प्रथम जीवों को उद्बोधित करता है। असंख्य जीव प्रलयावस्था में निश्चेष्ट मूर्च्छित से पड़े रहते हैं। सृष्टि का समय आने पर परमात्मा अपनी इच्छाशक्ति से जीवों को उद्बोधित करता है जिससे परमाणुओं में गति उत्पन्न हो जाती है। आज के वैज्ञानिक भी इस बात को मानते हैं। जीवों में प्रविष्ट परमात्मा की इच्छा का असर जीवों पर पड़ना स्वाभाविक है। इस क्रिया का हम अपने जीवन में भी अनुभव कर सकते हैं। हर्ष, शोक, चिन्ता का प्रभाव शरीर के परमाणुओं पर पड़ता है। हर्ष में रोंगटे खड़े हो जाते हैं और शोक–चिन्ता में चेहरा मुरझा जाता है। हमारी इच्छा के प्रभाव से शरीर के परमाणु गतिशील हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार निराकार परमात्मा जीवों के माध्यम से जड़ परमाणुओं में गति उत्पन्न करता है। इससे सारे प्राकृतिक परमाणु गतिशील हो जाते हैं।

पंडित रघुनन्दन शर्मा "वैदिक सम्पत्ति" पुस्तक में लिखते हैं कि जीवों की हलचल से प्रकृति के पाँचों कर्म उत्पन्न होते हैं– ऊपर जाना, नीचे जाना, आकर्षण, फैलना और स्थान देना। अग्नि का गुण है ऊपर जाना, पृथिवी का गुण है आकर्षण, वायु का गुण है फैलना और आकाश का गुण है स्थान देना। जब परमात्मा जीवों के द्वारा प्रकृति परमाणुओं में गति उत्पन्न करता है उस समय अग्नि के परमाणु ऊपर जाते हैं, जल के परमाणु नीचे जाते हैं। ऊपर–नीचे जाने के कारण दोनों शक्तियाँ टकरा जाती हैं। इस टकराहट से एक विशाल ठेलपेल प्रारंभ हो जाता है। पृथिवी के परमाणु उस ठेल को ठहराते हैं क्योंकि उनमें आकर्षण–गुण है। वायु के प्रसारण गुण वाले परमाणु उस ठेलपेल को धक्का लगाते हैं, आकाश के परमाणु उस ठेलपेल को गमन के लिए स्थान दे देते हैं। इस प्रकार सारा परमाणु समूह चक्राकार गति में घूम जाता है। जैसे बच्चों के द्वारा अँगुलियों के द्वारा गोली नचा दी जाती है उसी प्रकार प्रकृति के पाँचों कर्म परमाणु–पुंजों को चक्राकार गति में घुमा देते हैं। इस चक्राकार गति को वेद में 'हिरण्यगर्भ कहा गया है। लोक में इसे 'ब्रह्मा' नाम देते हैं। यह प्रारंभिक गोला बहुत चमकीला और बहुत बड़ा था। इसी गोले से अलग–अलग अनेक गोले उत्पन्न हुए। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि। उस आदिम सृष्टिगर्भ को सहस्रशीर्ष, स्वयम्भू, हेमाण्ड, ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ कहा गया है।

प्रत्येक सौर जगत् को 'विराट्' कहा गया है। इस अनन्त सृष्टि में अनेक विराट् हैं। इस प्रकार परमात्मा बिना हाथ–पाँव के सृष्टि की रचना करता है। प्रत्येक प्रलय के बाद इसी प्रकार सृष्टि की रचना होती है।

आर्य समाज रावतभाटा वाया कोटा (राजस्थान) 323307

www.thearyasamaj.org

महात्मा आनन्द स्वामी के जन्म दिवस 15 अक्टूबर पर विशेष

धन्य है तुझको, ए ऋषि! तूने हमें जगा दिया

● सत्यपाल आर्य

देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर

कई बार दिखने में साधारण, सामान्य घटनाएँ, छोटे–छोटे काल खण्ड, पल, क्षण, सवाद मानव जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अपने आप में दैनन्दिन जीवनचर्या का सामान्य भाग होने पर भी ये अपने वाली पीढ़ियों के लिए युग युगान्तर तक ज्योतिर्पुंज का कार्य करते हैं।

स्वाति नक्षत्र में न जाने कितने बिन्दु धरती पर गिरे होंगे परन्तु सीप के खुले मुँह में गिरकर मोती कितने बन सके? इतिहास ने साधुओं के साथ हुए छोटे से संवाद से रत्नाकर जैसे दुर्दान्त डाकू को आदि कवि महर्षि वाल्मीकि बनते देखा है। "अन्धे की सन्तान अन्धी होती है" इन छः शब्दों के द्रौपदी के परिहास ने तत्कालीन विश्व के अधिकतर वीर, विद्वान, तपस्वी, योगी, राजा महाराजाओं को कुरुक्षेत्र के युद्ध में धरती पर लिटा दिया। बूढ़ा, बीमार शवयात्रा व संन्यासी तो हर व्यक्ति प्रायः देखता है परन्तु इन के दर्शनमात्र से समाज को नई राह दिखाने वाला सिद्धार्थ तो कोई विरला ही होता है। "मैं तो रूक गया, तू कब रुकेगा" महात्मा बुद्ध के इन सात शब्दों ने अंगुलिमाल डाकू के जीवन का कायाकल्प कर दिया।

पति–पत्नी में वाद–विवाद संवाद तो दाम्पत्य जीवन की सामान्य घटना है। परन्तु रत्नावली के

अस्थि चर्ममय देह मम, ता में ऐसी प्रीति,
यदि होती श्रीराम में, तो क्यों होती भव भीति?

इस उपालम्भ ने एक अतिकामी पुरुष को श्री रामचरितमानस का उद्गाता बाबा तुलसीदास बना दिया।

वृक्षों से फल सदा ही नीचे की ओर ही गिरते हैं परन्तु सेब के नीचे गिरने की घटना ने न्यूटन को गुरुत्वाकर्षण का मन्त्रद्रष्टा बना दिया।

एकान्त में पाषाणखण्डों पर यदि कुछ खाने की सामग्री पड़ी हो तो चूहे खाते ही हैं, उत्पात भी करते हैं, मूत्र पुरीष भी, उस पर चढ़कर करते हैं, परन्तु शिव प्रतिमा पर चढ़े चूहे ने मूलशंकर से दयानन्द बनने की भूमि को तैयार कर दिया।

प्रज्ञाचक्षु जगद्गुरु विरजानन्द ने न जाने कितने ब्रह्मचारियों को व्याकरण एवं सत्य धर्म का पाठ पढ़ाया, परन्तु ज्ञानचक्षु प्राप्त करने वाला दयानन्द तो केवल दयानन्द ही था!

"अमीचन्द है तो हीरा, परन्तु कीचड़ में पड़ा है" स्वामी दयानन्द की इस प्रताड़ना ने मेहता अमीचन्द के जीवन की दशा व दिशा का शीर्षासन करवा दिया।

मृत्यु जीवन का अन्तिम ध्रुव सत्य है। परन्तु वाह! रे दयानन्द तेरी मृत्यु ने आर्य जाति को नया जीवन दे दिया। अन्तिम वेला में पं. गुरूदत्त को अटल ईश्वर विश्वास दे दिया। ठीक कहते हैं पण्डित चमूपति

"जिस मौत से दुनिया रश्क (ईर्ष्या) करे उस मौत की अजमत (महत्ता) क्या होगी?

आर्य समाज की व्यासवेदी से लाखों आर्यजनों ने व्याख्यान सुने परन्तु "मुगला" डाकू का जीवन बदलने के लिए आधा अधूरा व्याख्यान ही काफी था जिसका सार था, **"अवश्यमेव भोक्तव्यं" कृतं कर्म शुभाशुभं"** अर्थात् प्राणिमात्र को अपने किए कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। किसी भी धार्मिक जप, तप, अनुष्ठान, दान, पूजा, पाठ से पाप क्षमा नहीं होते।

वाह रे! दयानन्द तेरी जय हो!

सुनते हैं कि वर्तमान पाकिस्तान के पंजाब के जिला स्यालकोट के एक समृद्ध कस्बे जलालपुर जट्टा के एक निःसन्तान दम्पति को सिखों के नवम् गुरु श्री तेग बहादुर के आशीर्वाद, वरदान (चमत्कार) से जीवन की संध्या में पुत्र सुख की प्राप्ति हुई थी।

कृतज्ञ दम्पति ने अपने पुत्र को श्री गुरू के चरणों में अर्पित कर दिया। इस होनहार बालक ने बड़े होकर गुरबानी का प्रचार किया, गुरूद्वारों और ठाकुरद्वारों की स्थापना की, गुरूघर के सेवक महन्त बन कर गद्दी की प्रतिष्ठा व मान्यता बनाई। उसी परम्परा को जीवित रखने वाले उसके वंशजों की, महन्तों की गद्दी के वारिसों की बड़ी धार्मिक, सामाजिक मान्यता व प्रतिष्ठा हुई। इस गद्दी के वारिसों के पास बहुत बड़ी जमीन, जायदाद धन–दौलत, पशु व इज्जत, मान–सम्मान था।

आज से 130–135 साल पहले एक स्वतन्त्र चिन्तक, विद्वान, पण्डित अन्धविश्वास की लीक से हटकर, तर्क की कसौटी पर कसकर सच्चाई को मानने वाले इस गद्दी के वारिस बने।

तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों, अन्धविश्वासों, पाखण्डों ने इस महन्त की सोच को हिला दिया।

इस गाँव के एक मात्र विद्वान बुद्धिजीवी स्थानीय गिरजाघर के पादरी से होने वाली धर्म चर्चा ने हिन्दू धर्म के प्रति दूरी को और बढ़ाया तथा ईसाई धर्म के प्रति सकारात्मक सोच को विकसित किया। ईसाईयत की श्रेष्ठता उसके दिलोदिमाग में छा गई।

तर्क की कसौटी पर कस कर बनी नई सोच को साकार रूप देने के लिए महन्त जी ने हिन्दू धर्म का चोगा उतार फैंकने तथा ईसाई धर्म अपनाने का निर्णय कर लिया।

इस निर्णय को मूर्तरूप देने के लिए महन्तों का रोशन ए चिराग परिवार सहित वर्तमान पाकिस्तान के जिला मुख्यालय में ईसाईयों के बड़े गिरजाघर में बपतिस्मा (ईसाई बनने की धार्मिक रस्म) लेने के लिए गुजरात पहुँच गया। धूम धाम से होने वाले बपतिस्मा का दिन रविवार निश्चित हुआ।

महन्तों के परिवार की सामाजिक व धार्मिक प्रतिष्ठा को भुनाने के लिए ईसाई लाट पादरी ने इस धर्मपरिवर्तन के व्यापक प्रचार की योजना बनाई।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुजरात नगर में ढिंढोरा पिटवाया गया, आसपास के गावों में पोस्टर विज्ञापन लगवाए गए कि हिन्दुओं के धर्मगुरू का परिवार महन्तों की गद्दी का वर्तमान वारिस अपनी पत्नी व बच्चों के साथ इतवार को गुजरात के बड़े गिरजाघर में प्रातः प्रभु ईसा की शरण में आएगा। इस अवसर पर गिरजाघर में बपतिस्मा की रस्म के बाद उपस्थित धर्मप्रेमियों को मिठाई खिलाई जाएगी।

हिन्द की चादर श्री गुरू तेग बहादुर की आन मान व शान के शैदाई महन्तों के रोशन–ए–चिराग हिन्दू धर्म को अलविदा कहकर ईसाई बनेंगे।

ईसाई समाज, उनके नेता, धर्मप्रचारक, लाट पादरी इस सफलता पर अत्युत्साहित थे। बड़े विशाल टैण्ट में समागम की तैयारी हो रही थी। भोजन, मिठाईयाँ बन रहीं थीं। एक बड़ी घटना होने वाली थी। उस समय के प्रतिष्ठित सुस्थापित धर्म के मसीहा के धर्म परिवर्तन से ईसाईयत की तेजी से फैलने की आशा थी। उन महन्तों के भक्त, शिष्य, श्रद्धालुओं को आसानी से ईसाई बनाया जा सकता था।

किस्मत की खूबी देखिए, टूटी कहाँ कमन्द।

जबकि दो चार हाथ लब–ए–बाम रह गया।।

प्रारब्ध का खेल देखिए कि रविवार की पूर्व सन्ध्या, शनिवार की शाम को यह युवा महन्त गुजरात के बाजार में घूमने निकला। अचानक उसकी नजर नगर के बीच में एक मुख्य स्थान पर एक भीड़ पर गई। बहुत से लोग बैठे थे, बहुत लोग खड़े थे। एक भगवा कपड़े पहने लम्बा, चौड़ा, हष्ट–पुष्ट, सुडौल, विशालकाय देखने में सुन्दर बड़ी ऊँची आवाज में कुछ कहता सुनाई दिया। महन्त को साधु समाज से नफरत हो चुकी थी, परन्तु फिर भी राह चलते कौतुक, तमाशा, मदारी का खेल, जड़ी बूटी बेचने का प्रचार सुनने गाँव का आदमी खड़ा हो ही जाता है।

राह चलते आम आदमी का तमाशा देखने खड़ा होना एक छोटी सी घटना है परन्तु इसका प्रभाव कितना दूरगामी हुआ, पाठक विश्लेषण करने के लिए स्वतन्त्र हैं।

यह महन्त भी सहज भाव से तमाशबीन बनकर सुनने का खड़ा हो गया है। साधु का रूप बड़ा तेजस्वी था, वाणी प्रभावशाली थी, आवाज में जादू था, आकर्षक था, विचित्र सम्मोहन था। चर्चा का विषय बड़ा रूचिकर व मन, बुद्धि, सोच के अनुकूल व सामायिक लगा।

साधु, महात्मा, संयासी, आर्य धर्म की विशेषताओं, भारतीय संस्कृति के गौरवशाली अतीत व अस्मिता पर व्याख्यान दे रहे थे। उसे ऐसा महसूस हुआ कि महात्मा जागीजाण (सर्वज्ञ) हैं। वह सब कुछ उसके मन की बातों का, उसके प्रश्नों का जवाब स्वतः दे रहा है। अब तक उसकी धर्मविपासा का किसी ने समाधान नहीं किया था। यह साधु तो उसके सब प्रश्नों का युक्तियुक्त, तर्कसंगत उत्तर बिना पूछे दिए जा रहा है।

फिर उस दिव्य विभूति ने ईसाई धर्म के खोखलेपन पर भयंकर कुठाराघात किया। साधु का एक एक शब्द उसके मन मस्तिष्क पर हथौड़े की सी चोट कर रहा था। मनीषी चिन्तक के मन में द्वन्द्व शुरू हो गया। प्रश्नों का सागर लहराने लगा।

उसका आत्मा हिला गया। जिस धर्म को वह त्याज्य, हेय, हीन व निष्कृष्ट मानकर छोड़ने जा रहा है, वह धर्म तो सर्वोच्च है, सर्वगुण सम्पन्न है, उसका अतीत भी महान है, वह धर्म आदर्श है, अनुकरणीय व वन्दनीय है।

दूसरी ओर जिस मार्ग पर वह चलना चाहता है, जिस धर्म को वह अपनाना चाहता है, उसकी निस्सारता व खोखलेपन की पोल इस साधु ने खोल दी। झूठ व फरेब के जाल में फँसकर वह सत्य से दूर होना चाहता है। साधु का कथन सत्य लगा।

व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् उसने संन्यासी से प्रश्न प्रतिप्रश्न किए। तर्क वितर्क किए। उसकी समस्त शंकाओं को निर्मूल किया, परम तपस्वी देवदूत ने।

युवा साधक का हृदय सोचने को मजबूर हो गया।

"क्या मैं जिस धर्म को छोड़ना चाहता हूँ वह पतित न होकर महान् है?"

क्या भारतीय संस्कृति का अतीत वास्तव में इतना गौरवशाली रहा है?

शेष पृष्ठ 6 पर ☞

त्याग भावना–सुख का आधार

● स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती

सभी मनुष्य सुख चाहते हैं दुःख कोई भी नहीं चाहता। सुख ही चाह में, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, वैष्णो देवी, कामाख्या, काशी, हरिद्वार, उज्जैन, मथुरा–वृन्दावन, त्रिवेणी, बनारस, बालाजी, अजमेर, चित्रकूट, रामेश्वरम्, द्वारिका, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों पर मानव समूह घूमते रहते हैं। परन्तु उन्हें धननाश स्वास्थ्य नाश, बलनाश, असन्तोष, अज्ञानता, अन्धविश्वास और अमानवीयता के अलावा कुछ प्राप्त नहीं होता। क्योंकि इन स्थानों पर सुख का रास्ता या साधन कोई नहीं बताता सभी वहाँ दुःख देकर अपना स्वार्थ पूरा करने में व्यस्त रहते हैं।

लोग शिवालय, रामालय, हनूमानालय, देवालय, कृष्णालय, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा आदि स्थानों पर जाकर प्रार्थना करते हैं कि "हमारे दुःख दूर कर दो" जबकि दुःख दूर करने वाला वहाँ कोई नहीं होता। अतः सब धोखा खाते हैं। भूल जाते हैं कि –

अवश्येव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।

अर्थात् जो भी शुभ या अशुभ कर्म तुमने किए हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

मानव गीता को धर्म ग्रन्थ मानता है। कुछ तो उसे पाँचवाँ वेद कहते हैं। लेकिन अज्ञानता के कारण वे उसमें कहे उपदेशों को न जानते हैं, न मानते हैं। गीता में स्पष्ट कहा हैः–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूः मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। गीता–2–47

अर्थात्– हे मनुष्य! तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म के फल पर नहीं। फल की इच्छा रखकर कर्म मत कर, किन्तु तू अकर्मण्य भी मत बन। यजुर्वेद में भी कहा है–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। यजु.40–2

अर्थात्– हे मनुष्य! (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा कर (एवम्) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्तमान (त्वयि) तुयि (नरे) व्यवहारों को चलाने वाले जीवन के इच्छुक होते हुए (कर्म) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्यकर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इससे जो और प्रकार से (न, अस्ति) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है।

अर्थात्– शुभ कर्म कर, फल की इच्छा को त्याग दे। क्योंकि वेद कहता है–

ईशा वास्यमिद्ँसर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

(यजु. 40–1)

पदार्थ– हे मनुष्य! तू (यत्) जो (इदम्) यह प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चर प्राणी मात्र (ईशा) संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है। (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किए हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (गृधः) अभिलाषा (मा) मत कर।।

अर्थात् जब मनुष्य संसार में उपलब्ध भौतिक पदार्थों के उपभोग हेतु दूसरे (परमात्मा) की वस्तु समझकर त्याग भावना से प्राप्त करने के लिए शुभ कर्म करता है तभी सुख व आनन्द प्राप्त होता है। इस विषय में एक शिक्षाप्रद कहानी इस प्रकार है कि–

एक राजा था। बड़ी लगन से राज्य करता था। प्रजा का बहुत ध्यान रखता था परंतु कार्यों को करते हुए बहुत थक जाता था। जब बहुत परेशान हो गया तो अपने गुरु के पास गया, जो एक वन में एक वृक्ष के नीचे रहते थे। उनके पास जाकर प्रणाम किया और बोला– "गुरुदेव मैं इस राज्य के झंझटों से, इसकी समस्याओं से इसकी उलझनों से दुःखी हो गया हूँ। एक समस्या को हल करता हूँ तो दूसरी पैदा हो जाती है। नित नई उलझन, नित नये झगड़े। मैं तो बहुत दुःखी हो गया हूँ, इस जीवन से क्या करूँ?

गुरु ने कहा– "राजन्! ऐसी बात है तो छोड़ दे उस राज्य को।"

राजा ने कहा– "कैसे छोडूँ? राज्य छोड़ने से उसकी समस्याएँ सुलझ नहीं जाएँगीं। सब कुछ तितर–बितर हो जाएगा। अराजकता फैल जायेगी चहुँ ओर।"

गुरु ने कहा– "अच्छा! ऐसा होगा, तो अपने पुत्र को राज्य दे दें। आप मेरे पास आकर रहें, जैसे मैं रहता हूँ, वैसे ही निश्चिन्त होकर रहे।"

राजा ने कहा– "परन्तु पुत्र तो अभी छोटा सा बच्चा है, वह इस भार को सँभालेगा कैसे?"

गुरुदेव ने कहा– "तो फिर भाई को दे दें।"

राजा ने कहा– "भाई अयोग्य है, मुझ से ईर्ष्या करता है। जनता को दुःखी करेगा। चारों ओर हा हाकार मचेगा।"

गुरु जी ने कहा– "अगर ऐसी शंका है? तो फिर आप अपना राज्य मुझे दे दें, मैं चलाऊँगा उसे।"

राजा ने (कुछ सोचकर) कहा– "यह मुझे स्वीकार है।"

गुरुदेव ने कहा– "तो हाथ में पानी लेकर संकल्प कीजिए।

"आज से मैंने सारा राज्य गुरुदेव को दान कर दिया।"

राजा ने ऐसा ही किया और उठकर चल पड़ा?

गुरु ने पूछा– "कहाँ जा रहे हो।"

राजा ने कहा– "कोष से कुछ रुपए लेकर किसी दूसरे देश में जाऊँगा। वहाँ व्यापार कर जीवन यापन करूँगा।"

गुरु ने हँसकर कहा– "जब राज्य मुझे दे दिया तो कोष भी मेरा ही हो गया। अब उस पर आपका अधिकार क्या है!"

राजा ने सिर झुकाकर कहा– "वास्तव में कोई अधिकार नहीं।" राज्य में वापिस नहीं जाऊँगा।"

गुरु ने पूछा– "तो फिर क्या करेंगे?"

राजा बोला– "कहीं जा कर नौकरी करूँगा।"

गुरु बोले– "यदि नौकरी ही करनी है तो मेरी ही करे लीजिए। इतना बड़ा राज्य है मेरे पास। उसे चलाने के लिए किसी न किसी को तो रखना ही पड़ेगा। आपको ही रख लेता हूँ। मुझे सेवक की आवश्यकता है, आपको सेवा करने की। बोलो– मेरी नौकरी करोगे?"

राजा ने (कुछ सोचकर) कहा– "करूँगा"

गुरु ने कहा– "तो जाइए, आज से मेरे सेवक (नौकर) बन कर राज्य को चलाइए। पर ध्यान रहे! आपका वहाँ कुछ भी नहीं। भला हो, बुरा हो, हानि हो, लाभ हो, सब मेरा होगा। आपको केवल वेतन मिलेगा।"

राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया। वापिस आकर राज्य चलाने लगा। कोष से वेतन लेता रहा।

कुछ मास बाद गुरु ने आकर पूछा– "कहो भाई! अब इस राज्य को चलाना कैसा लगता है? अब भी क्या दुःखी ही रहते हो? अब भी क्या जीवन संकटमय प्रतीत होता है?" राजा ने कहा– "नहीं महाराज! अब उसमें मेरा क्या है? मैं तो नौकरी करता हूँ– पूरे ध्यान से, परिश्रम से करता हूँ और फिर रात को निश्चित हो कर सो जाता हूँ।" जो कुछ भी भला–बुरा होगा सब आपका।

तो सुनो पाठको! यह है वह साधन, जिसको अपनाने के पश्चात् मनुष्य कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता। अपने आपको स्वामी न समझो, सेवक समझो। यह सब कुछ तुम्हारा नहीं है। तुम केवल अपना कर्तव्य पालन करने के लिए आए हो। उसे पूर्ण करो और चले जाओ।

जो कुछ स्त्री, पुत्र, भाई–बहन, माता–पिता और सम्बन्धी, धन–दौलत, मकान, गाड़ी है सब ईश्वर का है। उसी के राज्य का है। तुम तो राज्य के कर्मचारी हो। भोग वस्तुओं के रूप में वेतन मिला रहा है। जिस दिन सेवा निवृत्ति का समय आएगा, राज्य को छोड़कर जाना पड़ेगा। पेंशन के रूप में अगले जन्म के भोग मिलेंगे।

अतः अपना समझकर भोग हेतु प्राप्त वस्तुओं में लिप्त न हों। यही त्याग भावना सुख का आधार है।

मेरा जग में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।

तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर।।

दिनांक– 23 सितम्बर 2013

महर्षि दयानन्द भवन
3/4 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–110002
मो.– 09868720739

अवश्येव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्।

अर्थात् जो भी शुभ या अशुभ कर्म तुमने किए हैं, उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा।

मानव गीता को धर्म ग्रन्थ मानता है। कुछ तो उसे पाँचवाँ वेद कहते हैं। लेकिन अज्ञानता के कारण वे उसमें कहे उपदेशों को न जानते हैं, न मानते हैं। गीता में स्पष्ट कहा हैः–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूः मा तेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। गीता–2–47

अर्थात्– हे मनुष्य! तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म के फल पर नहीं। फल की इच्छा रखकर कर्म मत कर, किन्तु तू अकर्मण्य भी मत बन। यजुर्वेद में भी कहा है–

www.thearyasamaj.org

देश के प्राथमिक क्षेत्र में दुर्व्यवस्था

● उमाकान्त उपाध्याय

वर्तमान काल के अर्थशास्त्री देश की आर्थिक व्यवस्था को तीन क्षेत्रों में बाँटकर देखते हैं। प्रथम प्राथमिक क्षेत्र (प्राइमरी सेक्टर), द्वितीय औद्योगिक क्षेत्र (सेकेण्डरी सेक्टर) और तृतीय क्षेत्र (टर्शियरी सेक्टर), इस लेख में हम प्राथमिक क्षेत्र की कुछ दुर्व्यवस्थाओं की चर्चा कर रहे हैं। प्राथमिक क्षेत्र देश के अर्थतंत्र की आधारशिला है। इस क्षेत्र में दुर्व्यवस्था का अर्थ होता है कि देश के अन्य आर्थिक क्षेत्र उन दुर्व्यवस्थाओं से अवश्य ही प्रभावित होंगे।

प्राथमिक क्षेत्र (प्राइमरी सेक्टर) में कृषि नीति और पशु–पालन–संरक्षण की नीति को सम्मिलित किया जाता है। अपने देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अर्थशास्त्रियों का ध्यान प्राथमिक क्षेत्र की ओर सबसे अधिक आकृष्ट हुआ। देश के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के पश्चात परिस्थिति यह बनी कि पश्चिमी पाकिस्तान और बांग्लादेश में अतिरिक्त खाद्यान्नों के उत्पादन का क्षेत्र तथा कपास, गन्ना, जूट आदि कच्चे माल का उत्पादन का क्षेत्र चला गया और अधिक जनसंख्या तथा कच्चे माल को प्रयोग में लाने वाले कल–कारखाने, मिलें और उद्योग भारत में आ गए। आब भारतवर्ष को खाद्यान्नों और कृषि आधारित गन्ना, कपास, जूट की अत्यधिक आवश्यकता का अनुभव हुआ। कृषि का उत्पादन अधिक न बढ़ने से एक ओर जनता के भूखों मरने का दुर्योग तथा दूसरी ओर मिल–कारखानों में कच्चे माल की आपूर्ति न होने के कारण मिल–कारखानों के चलने में असुविधा तथा बंद होने का भय उपस्थित हो गया। भारत सरकार ने प्रथम पञ्च–वर्षीय योजना (1951–1956) में कृषि को प्रथम महत्त्व दिया। द्वितीय पञ्च–वर्षीय योजना में कृषि की उपलब्धि के आकलन में भूल के कारण उद्योग को महत्त्व दिया गया किन्तु शीघ्र ही भूल समझ में आ गयी और तृतीय पञ्च–वर्षीय योजना (1961–1966) में पुनः कृषि को प्राथमिकता मिली। कृषि उत्पादन वृद्धि के लिए दो प्रकार की नीतियाँ अपनाई गईं – (1) अधिक से अधिक भू–भाग को कृषि के उत्पादन के लिए तैयार किया जाए और (2) सघन कृषि और बहु–फ़सली खेती द्वारा उत्पादन को आगे बढ़ाया जाए।

(1)अधिकतम भू–भाग को कृषि के लिए प्रयोग करने की नीति में बिना कोई आगा–पीछा सोचे, जंगल, चरागाह, घास के मैदान, तालाब आदि को कृषि कार्य के लिए अधिगृहीत कर लिया गया। असंख्य वृक्ष काट डाले गए, घास के मैदान, चरागाह की जगह खेत बन गए। इसी प्रकार की अनेक विसंगतियाँ पैदा हुईं जिससे वायुमंडल, पर्यावरण आदि पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

(2)सघन कृषि के तहत रासायनिक उर्वरकों और बहु–फ़सली कृषि नीति अपनाई गई, परम्परा से प्रचलित गोबर, पत्ते, घास–फूँस, पशु–मल–मूत्र, खली आदि जैविक खादों का उत्पादन और प्रयोग घट गया। रासायनिक खादों का प्रचलन बढ़ा। यूरिया, सल्फर, पोटाश उर्वरक आदि पृथ्वी की उत्पादनशीलता को पचाकर फसल के उत्पाद की मात्रा को बढ़ा देते हैं किन्तु पृथ्वी की उत्पादन शक्ति में वृद्धि नहीं करते, इधर विदेशों से उन्नत बीज लाए गए, उनको अधिक खाद की आवश्यकता पड़ती है, उसी के साथ रासायनिक उर्वरकों ने कृषि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि तो की किन्तु यह भूमि की उत्पादनशीलता का अति–दोहन प्रमाणित हुआ जैसे शिशु माँ का दूध पीते पीते उसका खून भी चूसने लगे, यही स्थिति हमारी सघन कृषि–नीति की हुई, हमने गोबर, पत्ते, घास आदि से बनी जैविक खाद का पूरा प्रबंध किए बिना उन्नत बीज और रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग के कारण अच्छी उर्वर भूमि को ऊसर, बंजर बना दिया, यह रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग अल्पकालिक लाभ का प्रमाणित हुआ। पंजाब आदि जिन प्रदेशों में यह सघन कृषि अपनाई गई, वहाँ के किसान कुछ ही वर्षों में अपने का ठगा हुआ, लुटा हुआ अनुभव कर रहे हैं।

प्रारम्भिक क्षेत्र में कृषि और पशुपालन – दो समस्याओं को लिया जाता है, कृषि उत्पादन हरित क्रांति के नाम से जाना जाता है और पशुपालन तथा संरक्षण से दूध का उत्पादन होता है और उसे श्वेत क्रांति के नाम से पुकारा जाता है।

श्वेत क्रांति की विडम्बना – हमारे देश में सवा सौ करोड़ की जनसंख्या बसती है। यहाँ दूध, घी की अच्छी आवश्यकता है। जनता के स्वास्थ्य के लिए भी दूध, दही, मक्खन, घी, सब कुछ आवश्यक है। हमारे देश में श्वेत क्रांति के कई अच्छे केंद्र कार्य कर रहे हैं। गुजरात में अमूल, मध्य प्रदेश में सांची, बिहार में सुधा, उत्तर प्रदेश में......, पश्चिम बंगाल में मदर डेयरी आदि एजेंसियाँ श्वेत क्रांति को सफल बनाने में लगी हुई हैं। अपने देश में गाय, भैंस, भेड, आदि पशु दूध के लिए पाले जाते रहे हैं किन्तु एक तो जगलों, चरागाहों की बड़ी कमी हो गयी है। गाय, भैंस, जब दूध देना बंद कर देती है तो उनके खिलाने–पिलाने का खर्चा बहुत बढ़ जाता है। हरित क्रांति से पहले देश के प्रायः सभी गाँवों में गाय, भैंसे आदि बड़ी संख्या में रहतीं थीं। अपने देश में गायों, भैंसों की बड़ी दुधारू नस्लों की बहुतायत थी। मुर्रा भैंसें 30–40 लीटर तक दूध देती थीं। हरियाणा की साहीवाल गाय बहुत प्रसिद्ध थी। अब इन नस्लों के पशु बूचड़खाने में जाने लगे हैं और अब ये नस्लें दुर्लभ होती जा रही हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की चेतावनी– विश्व मार्केट में मांस का दाम बहुत बढ़ गया है अतः भारत सरकार विदेशी मुद्रा कमाने के लिए मांस का निर्यात बड़ी तीव्र गति से बढ़ा रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि विभाग ने भयानक चेतावनी दी है कि अगर मांस के निर्यात की यही गति रही तो अगले 4–5 वर्षों में भारत में दूध का भीषण संकट पैदा हो जाएगा। बच्चों को भी दूध नहीं मिल पाएगा। इधर सरकार है कि मँहगी विदेशी मुद्रा कमाने के लिए गाय और भैंस के माँस का निर्यात बहुत अधिक बढ़ाती जा रही है। गाय, भैंस के मांस के निर्यात के आंकडे देश की आत्महत्या के समान लग रहे हैं। सन् 2002 में भारत ने 6 लाख टन मांस का निर्यात किया था, सन 2010 में 7 लाख 25 हजार टन, सन् 2011 में 12 लाख टन और सन 2012 में 15 लाख टन मांस का निर्यात हुआ था। सन 2013 में 21 लाख टन मांस निर्यात का अनुमान है। माँस का निर्यात करने वाले देशों में भारत 2007 में 15वें स्थान पर था। 2012 में दूसरे स्थान और अनुमान है कि 2013 में पहले स्थान पर पहुँच जाएगा। इधर 12वीं पञ्च–वर्षीय योजना में भारत सरकार द्वारा 27 हजार करोड़ रुपयों की लागत से नए, अति–आधुनिक बूचड़खाने बनवाने की योजना है। अब तो देश के गौ–मांस उत्पादक प्रान्तों में भी सरकार की इस नीति के भयानक परिणामों की चर्चा होने लगी है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश गौ–मांस आपूर्ति का बड़ा प्रसिद्ध क्षेत्र है। यहाँ के "गौ–मांस निर्यात रोको संगठन" के अधिकतम सदस्य किसान और कसाई हैं सहारनपुर में गौ–मांस निर्यात का विरोध करने वाले संगठन के संयोजक मोहम्मद इरफ़ान ने बयान दिया है कि यदि गाय और भैंस के मांस का निर्यात रोका नहीं गया तो बच्चों को भी दूध नहीं मिल पाएगा। सरकार मांस के निर्यात से मँहगी विदेशी मुद्रा कमाकर विदेशों से दूध का पाउडर मँगाने की योजना में है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और ब्राजील ने मांस का निर्यात कम कर दिया है। जबकि भारतवर्ष के नीति–निर्माता अपने देश के पशुओं का वध करके विदेशी मुद्रा कमाने के लोभ में हैं।

विदेशी ऋण चुकाने की किश्त, ऋण पर ब्याज और आयात का मूल्य, सब मिला कर हमारे निर्यात से बहुत अधिक है और सरकार अपनी अदूरदर्शी हानिकारक नीतियों के कारण विदेशी कर्ज के मकड़जाल में फँस गई है। फलस्वरूप हमारा विदेशी मुद्रा कोष घट रहा है, हो सकता है कि हमें सोना फिर गिरवी रखना पड़े।

पी–30 कालिन्दी
हाउसिंग स्टेट
कोलकाता–89

☞ *पृष्ठ 4 का शेष*

धन्य है तुझको, ए....

ये पाखण्ड, रूढ़िवाद, आडम्बर आदि विकृतियाँ वैदिक धर्म का हिस्सा नहीं है?

क्या वैदिक संस्कृति इतनी पवित्र एवं सर्वोच्च है?

उसकी अन्तरात्मा में हलचल मच गई। धर्म परिवर्तन के संभावित प्रभावों को सोचकर उसका मानस क्रन्दन कर उठा, बिलबिला उठा। उसका मन वेदना से भरकर चीत्कार कर उठा।

–अरे! तू क्या करने जा रहा है?

–अब तो इस भूल का कोई निराकरण सम्भव ही नहीं।

उसकी! आँखों में गंगा जमना बहने लगी। उसका शरीर अनायास उस तेजस्वी, तपस्वी, महान, विद्वान, साधु महाराज के चरणों में लेटने लगा। करुणा के सागर संन्यासी को नई दृष्टि से निकट से देखा तो देखता ही रह गया। उसे लगा कोई उसकी आत्मा को अमृतमय कर रहा था। क्यों न वह उसे गुरु स्वीकार कर ले?

दयानिधि साधु ने उसे अपने निकट बिठाया, प्रेम से दृष्टिपात किया और पूछा "वत्स क्यों रो रहे हो?"

वाणी ने साथ न दिया, बस घिग्गी बँध गई, उस निष्पाप सत्यान्वेषी जिज्ञासु की। घबराए सहमे हुए ने साहस बटोर कर समस्त शक्ति को इकट्ठा कर इतना ही कहा।

"बाबा मैं एक बहुत बड़ा पाप करने जा

शेष पृष्ठ 7 पर ☞

www.thearyasamaj.org

'वे दिन – वे लोग'

(नौवीं किश्त)

"प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्याम दास बिडला के जीवन से सम्बन्धित कुछ अनछुए पहलू"

● डॉ. अनिरुद्ध भारती

1 एक समय था, जब कलकत्ता के मारवाड़ियों में विधवा–विवाह के प्रश्न पर नए और पुराने लोगों में जबर्दस्त टकराव हो रहा था। पुराने लोग नयों को चेतावनी दे रहे थे, कि विधवा–विवाह का समर्थन करने वाले नरक में जाएंगे। इसका मुँह तोड़ जबाब देते हुए (तत्कालीन) युवा पीढ़ी के प्रवक्ता श्री घनश्याम दास बिड़ला ने कहा– मैं उस नरक में जाना ही पसन्द करूँगा, जिसमें राजा–राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे लोग होंगे। मुझे आप जैसे लोगों के एक स्वर्ग की न तो चाह और न आवश्यकता है।

श्री घनश्याम दास बिडला पर्दा प्रथा और दहेज प्रथा के भी घोर विरोधी थे। इनके इन विचारों के कारण "बिडला परिवार" सुधारवादियों का यानी आर्य समाजियों का परिवार माना जाता था, तथा दूसरी ओर बांगड़ (मारवाड़ी–समाज) को सनातन पन्थियों का दर्जा दिया गया। इस प्रकार उस समय मारवाड़ी समाज दो भागों में विभाजित हो गया। यहाँ तक कि समाचार–पत्र–जगत में भी दो विचार धाराएँ चलने लगीं। "दैनिक–विश्वामित्र" सुधारवादियों का समर्थक था, और "दैनिक–सन्मार्ग" पुरातन पन्थियों का।

(2) प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आर. सी. मजूमदार, घनश्याम दास बिडला को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते थे। उन्होंने के.एम. मुंशी के साथ मिलकर "भारतीय इतिहास और संस्कृति" नामक ग्रन्थमाला प्रकाशित करने की योजना बनाई, परन्तु इस कार्य के लिये आर्थिक संकट आड़े आया। तब श्री मुंशी ने श्री घनश्याम दास बिडला से सम्पर्क कर यथेच्छ धन प्राप्त किया। ऐसे कार्यों के लिये उद्यमी आर्थिक सहायता देने से प्रायः कतराते हैं। परन्तु बिडला परिवार ने मुक्त हस्त होकर आर्थिक सहयोग किया। डॉ. मजूमदार को भी इस धनागम से अपार हर्ष हुआ और आश्चर्य भी।

इस घटना के कुछ ही समय पश्चात् बनारस के हवाई अड्डे पर डॉ. मजूमदार अपने एक मित्र से बड़ी बेबाकी से बतियाते हुए कह रहे थे, भई, यह घनश्याम दास बिडला कुछ अलग ही किस्म के उद्योगपति मालूम होते हैं। क्योंकि उन्होंने इस पाण्डित्यपूर्ण कार्य के लिये इतना अनुदान दिया है। मेरी दृष्टि में उनका यह कार्य औद्योगिक सफलताओं से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। आश्चर्य तो यह है कि उन्होंने अपना विस्तृत परिचय भी नहीं दिया, सिवाय अपने नाम के।

डॉ. मजूमदार अपने मित्र से ये बातें कर ही रहे थे, तभी उनके निकट दूसरी ओर बैठे हुए एक अन्य यात्री ने उनसे कहा– "डॉ. साहब क्या आप इस घनश्याम दास बिडला को जानते हैं?" डॉ. मजूमदार ने उत्तर दिया– "अरे साहब, वे तो बड़े धनी मानी व्यक्ति हैं, वहाँ तक हमारी पहुँच कहाँ!" इस बात को सुनकर वह हँसा– "पर वे इतने बड़े भी नहीं कि आप उनसे मिल ही न सकें। वही घनश्याम दास बिडला आपके सामने उपस्थित है, आप खुद ही देख लीजिए।" फिर तो जो अट्टाहास हुआ, उससे अन्य यात्री भी इधर ही देखने लगे। यह डॉ. मजूमदार का घनश्याम दास जी से प्रथम परिचय था, जो समय के साथ–साथ घनिष्ठता में परिवर्तित होता चला गया।

(3) 15 अगस्त सन् 1947 के कुछ ही समय पश्चात् श्री घनश्याम दास बिडला की भेंट लन्दन में मि. चर्चिल के साथ हुई। उसी भेंट के समय मि. चर्चिल ने श्री बिडला जी से कहा– "Tell the oldman I have nothing now against him or India in my heart. If he comes to England, I shall welcome him, and if he invites me to India I shall go."

अर्थात् "उन बुजुर्ग महानुभाव (गाँधी जी) से कहिए कि अब मेरे मन में उनके या भारत के प्रति कोई विरोधी भावना नहीं है। यदि वे इंग्लैण्ड आते हैं, तो मैं उनका स्वागत करूँगा, और यदि वे मुझे भारत आने के लिये आमंत्रित करेंगे, तो मैं भारत अवश्य जाऊँगा।

मि. चर्चिल के इस कथन पर म. गाँधी जी का उत्तर था– "If he comes to India I shall welcome him, but I would not invite him." यदि वे (चर्चिल) भारत आते हैं तो मैं उनका स्वागत करूँगा, परन्तु मैं उन्हें आमंत्रित नहीं करूँगा।" पाठकगण इन दोनों महानुभावों के कथनोपकथन का स्वयं भाव समझ लें।

आर्य पी.जी. कॉलिज
पानीपत 132103

☞ पृष्ठ 6 का शेष

धन्य है तुझको, ए....

रहा हूँ। बचने का कोई मार्ग नहीं सूझता। मेरे और मेरे परिवार का दुर्भाग्य है जो यह आपका व्याख्यान उपदेश पहले क्यों नहीं सुनने को मिला?

कल मेरा और मेरे कुल का सर्वनाश हो जाएगा। प्रभु मैंने कल परिवार सहित ईसाई बनने का संकल्प ले लिया है। इससे बचने का कोई मार्ग नहीं सूझता।

संन्यासी ने प्रतिप्रश्न किया–क्यों?

जिज्ञासु–ईसाई पादरी कहते हैं कि उनका धर्म हमारे धर्म से अच्छा है परन्तु आपकी बातें सुनकर लगता है वह झूठ से मुझे बहका रहा है। मेरे ज्ञानचक्षु अब खुल चुके हैं। मुझे अपने और उसके धर्म की सच्चाई का पता चल गया है। परन्तु मैं वचन दे चुका हूँ। मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ। मैं सूर्यवंशी भगवान राम का वंशज हूँ।

"रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जाए पर वचन न जाई।।

संन्यासी– वत्स! सत्य को जाने बिना की गई प्रतिज्ञा असत्य होती है। तुम्हें असत्य द्वारा बहकाया गया है! तुम्हारा आत्मा सत्य एवं असत्य को जानने वाला है।

जिज्ञासु–वचनभंग के पाप से मेरा कुल सम्मति, वैभव, मर्यादा सब नष्ट हो जाएगा। परन्तु धर्म परिवर्तन से मेरा सर्वनाश होना निश्चित है। मैं क्या करूँ? मेरे आगे कुआँ तथा पीछे खाई है। मैं आगे बढ़ सकता हूँ न पीछे लौट सकता हूँ। मुझे बताओ! मुझे सच्ची राह दिखाओ।

संन्यासी–वत्स! असत्य के आवरण में लिपटी प्रतिज्ञा स्वतः असत्य होती है। तुम्हें वैदिक धर्म की झूठी बुराईयाँ दिखाई गईं। तुम्हें अब सत्य असत्य का विवेक हो गया है। जाओ! उस धर्मगुरु से कहो कि आप हमारे संन्यासी से अपने ईसाई धर्म की श्रेष्ठता और आर्य धर्म की हेयता सिद्ध करो। यदि आप इस प्रयोजन में सफल हो जाते हैं तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं व मेरा परिवार उस संन्यासी के साथ ईसाई बन जाएँगे। अन्यथा आपको हिन्दू धर्म स्वीकार करना होगा।

डूबते को मानो तिनके का सहारा मिल गया। जिज्ञासु, धर्म पिपासु अविलम्ब ईसाई पादरी महोदय के टैण्ट की ओर लपका। जहाँ भारी उत्साह एवं हलचल थी। स्वागत की तैयारी हो रही थी किसी बडे हिन्दू महन्त के ईसाई धर्म में आने की।

जिज्ञासु ने बिना किसी भूमिका व लाग लपेट के पादरी के सामने संन्यासी महोदय की चुनौती रख दी।

ईसाई पादरी के मन मस्तिष्क में लेशमात्र भी शंका नहीं हुई। वह हिन्दू धर्म के विद्वानों से दो दो हाथ करने को तैयार था। क्योंकि उसे विश्वास था कि हिन्दू अज्ञान व अंधकार में आकण्ठ डूबे हुए हैं। पुराणों के अवैज्ञानिक गपोड़ों को वह धराशायी कर देगा। उसने सोचा सम्भवतया वह संन्यासी कोई लाल कपड़े पहनने वाला भिखारी होगा?

परन्तु इसके विपरीत उसका पाला किसी आदित्य ब्रह्मचारी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान, तपस्वी साधु से पड़ा था।

संन्यासी ने ईसाइयत में व्याप्त अवैज्ञानिकता पर प्रश्न उठाए। फिर उसने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता, वैज्ञानिकता व सर्वस्वीकार्यता की स्थापना की। मनुष्यमात्र को ईश्वरपुत्र आर्य बताया।

पादरी अनपेक्षित के लिए तैयार न था। उसकी हवाईयाँ उड़ने लगीं। शरीर पसीना–पसीना हो गया, वाणी लड़खड़ा गई। समस्त शरीर अज्ञात हानि के भय से, क्रोध से काँपने लगा।

अपने शिकार को हाथ से जाता देख कहा कि ये साधु तो अज्ञानी है, ये धर्म का मर्म समझने में असमर्थ है। तुम पाण्डाल में चलो जहाँ प्रभु यीशु तुम्हें अपनी शरण में लेंगे और तुम्हारे सभी पाप क्षमा हो जाएँगे।

परन्तु प्रकाश के सामने अँधेरा कभी भी टिक नहीं सका। सच्चे साधक सत्यान्वेषी, धर्मपिपासु के ज्ञानचक्षु खुल चुके थे। अज्ञान तिमिर नष्ट हो चुका था। सत्य को वह जान चुका था। अपने सांस्कृतिक, धार्मिक अतीत को पहचान चुका था।

ईसाईयत की श्रेष्ठता व हिन्दू धर्म की हेयता सिद्ध करने में असमर्थ रहने से पादरी महोदय को प्रतिज्ञानुसार आर्य धर्म में दीक्षित होने को कहा।

उसका अपना प्यारा वैदिक धर्म सर्वोच्च है। वह अपने धर्म व संस्कृति को कभी नहीं छोड़ेगा। पादरी के पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई। बोला हमने तुम्हारे धर्म परिवर्तन के लिए इतना विज्ञापन किया है, भोजन मिठाई बनाई हैं। इसके नुकसान का जिम्मेदार कौन है?

सत्यशोधक हृदय में सत्य का सूर्य का उदय हो चुका है वह ईसाई न बनेगा। ईसाई पादरी अपना मुँह लेकर चला गया।

ये जिज्ञासु थे मुन्शी गणेशदास और संन्यासी थे आर्यकुल दिवाकर युगप्रवर्तक,

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

www.thearyasamaj.org

स्वर्गिक सुख के दस उपाय

● डा. अशोक आर्य

मानव सदा सुख की कामना करता है। इस सुख को पाने के लिए वेद में दस उपाय बताए हैं। यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत आने वाले मन्त्र 22 में यह सुख पाने के लिए दस उपाय इस प्रकार बताए हैं :–

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नी षोमयोरिषे त्वा धर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथा उरू प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके।। यजुर्वेद 1.22

हम चाहते हैं कि हमारा ग्रहस्थ जीवन सुखमय हो, आनन्द मय हो किन्तु कैसे हो? यह जानने का हम यत्न ही नहीं करते। यदि कभी कुछ साधन इस के लिए सोच भी लेते हैं तो इन साधनों को हम अपनाते ही नहीं। फिर हमें यह आनन्द कैसे मिले? जो हम चाहते हैं, उसे समझना भी होता है, उसे पाने के लिए उपाय भी करने होते हैं। स्वर्गिक आनन्द चाहते हैं। यह कैसे मिल सकता है? इसे पाने के लिए हमारे दयालु परमपिता ने कुछ उपाय बताए हुए इस मन्त्र के माध्यम से हमें उपदेश किया है कि हे प्राणि। यदि तू अपने गृहस्थ जीवन में स्वर्गिक आनन्द चाहता है तो तू इस मन्त्र में बताए दस उपाय कर। इन दस उपायों को अपना कर ही तू इस सुख को पा सकता है। ये उपाय हैं :–

1. उत्तम संतान निर्माण का आश्रम :–

गृहस्थ है प्रजा को बढ़ाने के लिए। इस प्रजा की उत्पति के लिए ही पत्नी घर में आती है और कहती है कि मैं तुझे साधारण नहीं अपितु उत्तम सन्तान देने के लिए आई हूँ। इस निमित्त तेरा वरण किया है, सम्पर्क किया है। हमारा यह जो गृहस्थ है, यह भोग विलास के लिए नहीं है। यह उत्तम सुप्रजा की उत्पत्ति के लिए है। इसलिए पिता उपदेश रहे हैं कि हे जीव! तू यत्न कर कि तेरी होने वाली सन्तान उत्तम गुणों से युक्त हो।

2. सन्तान प्रभु की दी धरोहर है :–

गृहस्थ को हमने सन्तान को प्रजा को बढ़ाने के लिए ग्रहण किया है। किन्तु इससे हमारी जो सन्तान बढ़ती है, वह सन्तान वास्तव में हमारी नहीं होती। इस तथ्य को हम समझें कि हमने इस सन्तान को जन्म दिया है। यह सन्तान उस प्रभु की ही दी हुई है जिस प्रभु का नाम अग्नि है। हम सब मन्त्र की इस भावना को समझें। हम जानें कि यह जिसे हम अपना पुत्र कहते हैं, इसे देने वाला अग्निरूप प्रभु है। इस कारण यह उसकी दी हुई धरोहर मात्र है। जिसे हम प्रतिदिन अपना कहते हैं, इसे कुछ समय के लिए प्रभु ने हमें उधार दिया है।

3. अग्नि व सोम के विकास का प्रयास :–

मन्त्र कहता है कि हे प्राणी! मेरी बात को बड़े ध्यान से समझ कि यह, जिसे तू अपनी सन्तान मान कर चल रहा है, यह तेरी नहीं है, यह दो तत्त्वों से मिलकर बनी है। इसमें एक तत्त्व का नाम है अग्नि और दूसरे को सोम के नाम से जानते हैं। इस प्रकार यह अग्नि और सोम, इन दो तत्त्वों की है। इस सन्तान को पिता ने अग्नि तत्त्व दिया है। इस सन्तान के निर्माण में माता ने सोम तत्त्व दिया है। जीवन में जो आनन्द है, जो सुख हम अनुभव करते हैं, जिस प्रसन्नता को हम पाना चाहते हैं, वह सब अग्नि तत्त्व और सोमतत्त्व का ही परिणाम है।

4. अन्न के लिए पुरुषार्थ :–

अन्न एक ऐसी वस्तु है कि जिसका उपयोग इस जगत् के प्रत्येक प्राणी को करना होता है। यह ही हमारे जीवन का आधार है। इसके बिना हम जीवित ही नहीं रह सकते। इसे पाने की कामना करते हुए सुख का जो चतुर्थ साधन मन्त्र बता रहा है, वह यह है कि गृह पत्नी उस पिता से प्रार्थना करती है कि हे प्रभु! अन्न पाने के लिए मैं तुझे ग्रहण करती हूँ। आप का ध्यान करती हूँ, आप से प्रार्थना करती हूँ ताकि मुझे उत्तम अन्न प्राप्त हो सके। इससे जो बात स्पष्ट होती है वह ये है कि हम अपने जीवन को आगे चलाने के लिए अपने भोजन के साधन को पाने के लिए पुरुषार्थ करें, मेहनत करें और मेहनत करके ऐसा धन प्राप्त करें जिससे हम अन्नादि भोजन प्राप्त कर सकें।

5. शक्ति को बनाए रखें :–

हे जीव तू अन्न शक्ति का ही परिणाम है। उत्तम अन्न से जो उत्तम रस शरीर में आते हैं, उन रसों के परिणाम स्वरूप ही हम उत्तम, स्वस्थ, सन्तान प्राप्त करते हैं। इस अन्न के सेवन से ही हमारे शरीर में प्राण शक्ति निवास करती है। प्राण भी तब तक ही रहते हैं, जब तक हमारा शरीर क्रियाशील है। यदि शरीर क्रियाहीन हो जाता है तो प्राण भी इससे दूर होना चाहते हैं। इसलिए इस प्राण शक्ति को संभालने के लिए जीव को शक्ति का केन्द्र बनना, शक्तियों का पुंज बनना आवश्यक होता है।

6. शरीर, मन व मस्तिष्क का सन्तुलित व उत्तम विकास :–

हे मानव परमपिता ने तुझे सौ वर्ष की आयु दी है। इस आयु को पूर्ण कहा जाता है। तू पूर्ण आयु वाला है। तेरे जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए हमारे प्रभु ने तीन साधन दिए हैं। ये साधन जीव के जीवन को व्यवस्थित ढंग से व उत्तम रीति से चलाते हैं। ये साधन हैं, शरीर, मन तथा मस्तिष्क। इन तीनों साधनों का स्वस्थ होना, गतिशील अथवा क्रियाशील होना तथा सतत आगे बढ़ना, उन्नति पथ पर चलना आवश्यक होता है। अतः ऐसा यत्न कर कि ये तीनों सक्रिय बने रहें।

7. हम अपने हृदय को विशाल बनाएँ :–

हे जीव! प्रभु ने तुझे विस्तार वाला बनाया है। यह प्रभु का ही आदेश है कि तूँ निरन्तर अपना विस्तार करते हुए आगे बढ़। निरन्तर विस्तार को, उन्नति को प्राप्त हो। इस प्रयत्न में तूँ अपनी शक्तियों को तेजी से बढ़ा। तेजी से विस्तृत कर। यदि तू अपनी शक्तियों का विस्तार करेगा, अपनी शक्तियों को बढ़ाएगा तो तेरे जीवन की इस उन्नत परम्परा से तेरे हृदय में भी विशालता आएगी। अतः अपने हृदय में विशालता लाने के लिए भी तू अपनी शक्तियों का विस्तार कर।

8. यज्ञ से शक्ति विस्तृत होती है :–

जिस प्रभु के माध्यम से हम यह वेदोपदेश प्राप्त कर रहे हैं वह प्रभु ही हमारी शक्तियों को बढ़ाने वाला है। इसलिए यहाँ यह मन्त्र हमें उपदेश दे रहा है कि वह पिता हमारे सब यज्ञों का रक्षक है। यह जो तू शक्तियों के विस्तार के कार्य में लगा है, यह भी यज्ञ ही है। इसलिए मन्त्र कहता है कि वह पिता तेरी सब शक्तियों का विस्तार करे, इन्हें बढ़ाने में, विस्तृत करने में सहयोगी हो। तू अपने जीवन को यज्ञमय बना। जिस प्रकार अग्नि सदा ऊपर ही उठती है, आगे ही बढ़ती है तथा जो कुछ इस यज्ञ में डाला जाता है, उसे भी अपने साथ ऊपर, अपने साथ आगे को ले जाती है। इसी प्रकार अपने जीवन को यज्ञमय बना कर तू भी अपनी शक्तियों का भरपूर विस्तार कर।

9. हम सदा प्रभु से जुड़े रहे :–

तथ्य की बात तो यह है कि हमारी जितनी भी प्राप्तियाँ हैं, हमारी जितनी भी उपलब्धियाँ हैं, वे सब उस पिता के आशीर्वाद का ही परिणाम हैं। उसकी दया, कृपा का ही परिणाम हैं। प्रभु हमारे साथ है, तभी हम यह सब कुछ पा सकते हैं, अन्यथा हम कुछ भी प्राप्त न कर पाते। इसलिए हम सदा यह प्रयास करें कि हमारा प्रभु से सदा सम्पर्क बना रहे तथा कोई ऐसा काम न करें कि जिससे वह रूष्ट हो जाए और हमारा सम्पर्क, हमारा साथ छोड़ दे। प्रभु सम्पर्क में रहेगा तभी हम ऊपर की इन आठों बातों को अपने जीवन में ला सकेंगे, अन्यथा नहीं।

10. प्रभु कृपा से हमारा परिपाक हो :–

मानव परिपक्वता से ही सफलताएँ प्राप्त करता है। यदि वह अपने अन्दर परिपक्वता नहीं ला पाता तो वह ऊल–जलूल कार्य ही करता रहेगा, जिसका कुछ भी परिणाम नहीं होता। इसलिए अन्तिम भाग में मन्त्र यह उपदेश कर रहा है, यह सन्देश दे रहा है कि वह प्रभु सब का प्रेरक होने से सब को मार्ग दर्शन करता रहता है। वह पिता हमें परिपक्व बनाए। परिपक्व होने से हमारी शारीरिक, हमारी मानसिक व हमारी बौद्धिक शक्तियाँ उत्तम प्रकार से विकसित हों व विकास की ओर निरन्तर आगे बढ़ती रहें। इस प्रकार जो ठीक से उत्तम विधि से परिपाक बनेगा, उसके द्वारा ही वह तुझे सर्वोत्तम स्थान देगा, जिसे स्वर्ग के नाम से जाना जाता है।

104 शिप्रा अपार्टमेंट कौशांबी 201010
जिला गाजियाबाद
दूरभाषः 0120 2773400
वायुदूत 09718528068

☞ *पृष्ठ 7 का शेष*

धन्य है तुझको, ए....

वेदोद्धारक, वैदिक धर्म को पुनः स्थापित करने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती, जिन्होंने धर्म जाति को जगाने के लिए सर्वस्व अर्पण कर दिया।

यद्यपि मुन्शी गणेशदास को स्वामी दयानन्द का पूरा व्याख्यान सुनने का सौभाग्य तो नहीं मिला था और न ही पुनः श्री दर्शन का सौभाग्य।

परन्तु इस छोटी सी संक्षिप्त भेंट से, उपदेश व, शंका समाधान कर स्वामी दयानन्द ने मुन्शी गणेशदासको वैदिक धर्म में दीक्षित किया।

इतिहास साक्षी है कि मुन्शी गणेशदास केवल स्वयं ही अकेले महर्षि की दिखाई राह पर नहीं चले, जलालपुर जट्टा के कितनों को दयानन्द की ज्योति से ज्योतित किया। देखते–देखते एक सत्य धर्म का प्रकाश उस कस्बे में, उस कस्बे के आसपास के इलाके में फैल गया। मुन्शी जी को चाहें दोबारा अपने मसीहा, तारनहार के दर्शन करने या व्याख्यान सुनने का अवसर भले ही न मिला हो परन्तु सूर्य की अग्नि एवं प्रकाश से प्रकाशित हो अपने गाँव में एक आर्य समाज की स्थापना की, जिसके सचिव थे मुन्शी जी। एक आर्य स्कूल खोला, जिसके कर्ता–धर्ता थे मुन्शी जी। एक आर्य पुत्री पाठशाला बनाई जिसके प्रधान बने, मुन्शी जी। सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, निर्भीक पत्रकार, हैदराबाद सत्याग्रह के तीसरे अधिनायक, वेद कथाओं द्वारा जन जन–तक वैदिक सन्देश पहुँचाने वाले महात्मा आनन्द स्वामी (खुशहल चन्द खुर्सन्द) मुन्शी जी के लाड़ले सपूत थे।

मुन्शी जी के पौत्र श्री रणवीर को फाँसी का फन्दा देखने को मिला, अंग्रेजी जेल की यातनाएँ सहने वाले अन्य पौत्र श्री यश, श्री युद्धवीर एवं आजादी के लिए घोर यन्त्रणा सहने वाले श्री ओम प्रकाश, मुन्शी जी के तीसरी पीढ़ी के रोशन–ए–चिराग थे। मुन्शी जी के चौथी पीढ़ी के ज्योतिपुंज श्री पूनम सूरी सम्प्रति आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा एवं डी ए वी कालेज प्रबन्धकर्त्री समिति के प्रधान के रूप में दयानन्द का सन्देश जन –जन तक पहुँचा रहे हैं।

सत्यपाल आर्य सह मंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली

स्वातंत्र्योत्तर भारत का सर्वोत्कृष्ट हिन्दी-प्रेमी अंग्रेज़ : बी.बी.सी. के मार्क टली

● हरिकृष्ण निगम

व दो दशकों से अधिक दिल्ली में बी.बी.सी. के मुख्य संवाददाता व प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत मार्क टली स्वातंत्र्योत्तर भारत के उन अंग्रेजों में सर्वोत्कृष्ट माने गए हैं जो हिन्दी भाषा को इस राष्ट्र की असली पहचान मानते थे। हिन्दी के लिए अपनी गहरी प्रतिबद्धता के कारण देश के अंग्रेज़ी भाषी बुद्धिजीवियों में वे हिन्दी के सबसे बड़े समर्थक और पक्षधर कहे गए हैं। वे स्वयं अच्छी हिन्दी बोलते हैं और हर उस भारतीय पर जिस पर अंग्रेजी की कथित अन्तर्राष्ट्रीयता का जादू चढ़ा रहता है, उसे उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

उनके कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित ग्रंथ "इण्डिया : एन अनएण्डिंग जर्नी" में उन्होंने यहाँ तक खिन्नता प्रकट की कि जब मैं भारतीयों से हिन्दी में बोलता हूँ तब वे मुझे अंग्रेज़ी में उत्तर देते हैं– लगता है उन्हें हिन्दी बोलने में शर्म आती है। उन्हें दु:ख रहा कि इस पुरातन देश में लोग अपनी जड़ों से दूर जाने में भी गर्व महसूस करते हैं।

मार्क टली ने अनेक लेखों एवं टिप्पणियों में आधुनिक भारतीय समाज के विशेषकर शिक्षित वर्गों में व्याप्त, विरोधाभासों को अपनी पैनी दृष्टि से उजागर किया है। उन्होंने कुछ मौलिक प्रश्न भी उठाए हैं और हमारी मानसिकता पर करारा प्रहार किया है। हिन्दी दुनिया की पाँच सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में होने के बाद भी इस देश के कथित शिक्षित लोगों द्वारा क्यों नहीं सम्मानित की जाती है। एक बार तो उन्होंने यह छोटा सा प्रश्न 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के प्रबंधन से भी पूछा था पर वह उसके अनुत्तरित रहने से अप्रसन्न थे। उन्होंने कहा था कि टाइम्स समूह के हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' की बिक्री संख्या यद्यपि अत्यधिक थी, उसके विज्ञापनों के रेट अन्य अंग्रेजी पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर थे पर उसकी विज्ञापन दर तुलनात्मक रूप से कम क्यों है? साफ है कि सौ करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले देश में जो आज भी मात्र दो–ढाई प्रतिशत ही लोग अंग्रेजी जानते हैं फिर भी हिन्दी और भारतीय भाषाओं की उपेक्षा क्यों होती है?

मार्क टली पूरे विश्वास के साथ कहते हैं कि वे अंग्रेजी को भारतीय भाषाओं के ऊपर रखने के पूर्ण विरोधी हैं। "मेरे विचार में अंग्रेज़ी का हिन्दी की तुलना में अधिक महत्त्व केवल अस्वस्थ उपनिवेशवादी मानसिकता ही नहीं, बल्कि लगातार भारतीय विचारधारा को दबाने का माध्यम है और विदेशी उच्चवर्गवादी संस्कृति को जीवित रखने का साधन है।" वे आगे लिखते हैं कि मैं इस बात से भी सहमत नहीं हूँ जब इग्लैण्ड में मुझसे बहुधा कहा जाता है कि भारतीयों से अंग्रेज़ी का तोहफा कभी नहीं छीना जाना चाहिए क्योंकि अब तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विज्ञान और कम्प्यूटरों की भाषा है।

"भारतीय संस्कृति अपनी भाषाओं के बिना नहीं रह सकती", उनका मानना है कि लार्ड मेकाले की सन् 1835 में दी गई भाषा संबंधी अनुसंशाओं का उद्देश्य अंग्रेजी के माध्यम से बाबुओं की सेना तैयार करना था जो ब्रिटिश शासन की रक्षा कर सके। वे लिखते हैं: 'बाबुओं का राज आज भी भारत में है, मेकाले की आशाओं के अनुरूप केवल दुभाषियों के रूप में नहीं बल्कि शोषकों के रूप में जो अपने 'ब्राउन साहब' होने के अहसास से गर्व करते हैं। मार्क टली का यह वाक्य किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को बींध सकता है।

"इस देश में शक्ति प्रतिष्ठा व सम्पन्नता का रास्ता अंग्रेज़ी से होकर जाता है," मार्क टली साथ में कहते हैं कि किसी भी संस्कृति का गहन ज्ञान उस संस्कृति से जुड़ी भाषाओं द्वारा ही हो सकता है। अपने निजी जीवन के दृष्टांत देते हुए उन्होंने निष्कर्ष निकाला था कि "अंग्रेजी का घातक और सबसे बुरा प्रभाव व परिणाम अंग्रेजी बोलने वाली 'इलीट' या वर्ग दम्भियों का झूठा घमण्ड है।"

अपने बारे में स्वयं लिखते हुए उन्होंने कहा था कि बचपन में जब वे कलकत्ते में रहते थे सिर्फ अंग्रेजी में ही बोला जाता था और बंगाली या हिन्दी में बोलना पूरी तरह मना था। वे कलकत्ते में 1935 में पैदा हुए थे। पिता व्यापारी थे माँ घरेलू महिला। वे छह भाई–बहन थे और घर में हिन्दी बोलने की सख्त मनाही थी। उनके अभिभावक कहते थे कि वे अंग्रेज बच्चे हैं और इसलिए सिर्फ अंग्रेजी में ही बात करेंगे। परिवार में कड़े अनुशासन में न ही बंगला या हिन्दी भाषा सीखने की भी अनुमति थी। वह तो जब मार्क टली 30 साल की आयु में भारत वापस आए, तभी हिन्दी सीखी। उन्होंने पाया कि हिन्दी बहुत ही अच्छी भाषा है। कुछ लोग यह सोचते हैं कि जो अंग्रेज़ी में बोलता है वह बहुत बड़ा आदमी है। यह बिल्कुल गलत पाकर इस तरह की सोच को मैंने स्वतः तिरस्कृत कर दिया। मेरी तो स्थिति यह थी कि मैं जब भी किसी से हिन्दी में सवाल पूछता हूँ, लोग मुझे अंग्रेज़ी में ही जवाव देते हैं। "ऐसा क्यों? आखिर आपको हिन्दी बोलने में शर्म क्यों आती है?" उन्हें यह उत्तर जीवन–पर्यन्त नहीं मिला!

मार्क टली का इस बात में पूरा विश्वास रहा कि आगे आने वाले समय में भी इस देश में सही अर्थों में अंग्रेज़ी संपर्क भाषा नहीं बनेगी। अगर यह हो गया तो इसका अर्थ विद्यार्थियों को कई पीढ़ियों से उनकी अपनी भाषा और संस्कृति तक पहुँच छीन ली जाएगी। केवल हिन्दी का अनौपचारिक समर्थन ही नहीं बल्कि आज के बदलते सामाजिक मूल्यों एवं नई खोजों के परिप्रेक्ष्य में वे भलीभाँति जानते हैं कि विदेशी भाषा की गुलामी से राष्ट्रनिर्माण नहीं किया जा सकता है। भाषा केवल सम्प्रेषण का माध्यम नहीं बल्कि राष्ट्रीय एकता में योग दान भी कर सकती है। इस तरह के अनेक लेखों, साक्षात्कारों या कृतियों में मार्क टली के विचारों का सारांश यह है कि राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क भाषा का निर्माण हिन्दी जैसी सहज, सुगम व बोधगम्य भाषा के बल पर ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है।

ए, 1002– पंचशील हाईट्स
महावीर नगर, कान्दिवली (प)
मुम्बई–400067
दूरभाष– 28606451
मो. 9820215464

एक विस्मृत व्यक्तित्व/जीवन

'समर्पित व प्रेरक जीवन के धनी स्वामी अनुभूतानन्द'

● मनमोहनकुमार आर्य

स्वामी अनुभूतानन्द दलितों व पिछड़ों के सच्चे हितैषी व कर्तव्यनिष्ठ व आर्य पुरुष थे। आप एक दलित परिवार में जन्मे थे। महाभारत के पश्चात अज्ञानता के युग मध्यकाल में किसी समय हमारे तथाकथित पण्डित वर्ग ने अपने अज्ञान व स्वार्थों के कारण गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था को जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था में बदल दिया था और शूद्रों व स्त्रियों को उनके ईश्वर प्रदत्त अधिकारों यथा विद्याध्ययन, सह–अस्तित्व व समानता आदि के अधिकारों से वंचित कर दिया था। स्वामी जी का दलित परिवार में जन्म होने के कारण उन्हें इन बन्धुओं की समस्याओं का ज्ञान तो था ही साथ ही इन बन्धुओं के प्रति सहानुभूति व इनके कल्याण की भावना भी उनमें स्वाभाविक रूप से भरपूर थी। आर्य समाज ने दलितोद्धार का जो कार्य किया है उसमें स्वामी जी के द्वारा किए गए कामों का गौरवपूर्ण स्थान है।

स्वामी जी का जन्म वर्तमान पंजाब राज्य के अन्तर्गत पटियाला के "मानसा" स्थान पर हुआ था। आप दलित वर्ग की चूहड़ा बिरादरी में जन्में थे। स्वामी अनुभूतानन्द जी का पिता द्वारा धारण कराया गया नाम ठाकुरसिंह था। हिसार–सिरसा में आपके चाचा जलाल आणा रहा करते थे। इन चाचा से मिलने आप यदा–कदा जाया करते थे। जिस प्रकार लोहा पारस पत्थर के संपर्क में आकर अपने पूर्व गुणों का त्याग कर स्वर्ण के गुणों को धारण करता है, उसी प्रकार सज्जनों की संगति से मनुष्य बुराईयों का त्याग कर सद्गुणों को धारण करता है। वेद मन्त्र, **'ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव...'**, जो महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रिय मंत्र रहा है और जिसका उन्होंने स्तुति, प्रार्थना व उपासना के 8 मन्त्रों में विधान किया है, वह हमें ईश्वर की संगति व उपासना से बुराईयों का त्याग कर भद्र को ग्रहण

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

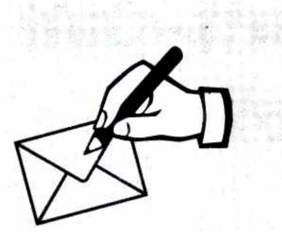

पत्र/कविता

दो सत्यार्थ प्रकाश जगत् को दीपावली मनाओ

जब-जब धरती पर था अज्ञान अंधेरा छाया।
ज्ञान दिवाकर देकर, हमने ही प्रकाश फैलाया।।

पूरब से ही ज्ञान सूर्य का पहले उदय हुआ था।
जब इस धरती पर मानव का प्रादुर्भाव हुआ था।।

हमसे ज्ञान ज्याति लेकर, अन्यों ने दिये जलाये।
इस प्रकार वे मुक्ति या तप से प्रकाश में आये।।

अंधकार से कमी नहीं पर हमने हाथ मिलाया।
तर्क तेज किरणा वालियों से उसे अशेष मिटाया।।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का श्रुति संदेश सुनाकर।
हमने प्रेरित किया ज्योति दर्शन हित सदा जगाकर।।

आज अमा की ये जो फैली है गहरी अंधियारी।
ज्योतिमर्य इतिवृत की झलकें इसमें छिपीं हमारी।।

नचिकेता ने ब्रह्माज्ञान यम से था आज हि पाया।
जिसमें मृत्यु से तर कर, अमृत का पथ है दर्शाया।।

और आज ही सावित्री ने भी यम के घर जाकर।
यम से 'पुत्रवती भव' का वरदान वांछित पाकर।।

सत्यवान को मृत्यु के मुख से भी छीन लिया था।
'मृत्योर्मा अमृतं गमय' का संदेश दिया था।।

अंधकार अज्ञान मृत्यु है श्रुतिज्योति है जीवन।
श्रुति ज्योति की दीपावलियें अस्तु करें हम रोशन।।

तो प्रकाश मय नव विहान पाकर जीवन हर्षेगा।
तिमिर अमा का सिर पर धरकर पैर अशेष भगेगा।।

ये मृतिका का दीप देह है इसको धन्य बनाओ।
इसमें प्रेम-नेह ऊर्जा की बाती धरो जलाओ।।

और आजीवन श्रुति ज्योति दे तम अज्ञान मिटाओ।
अपने अग्रज-पूर्वजोंवत् ज्योतित पथ अपनाओ।।

देव दयानन्द, रामतीर्थ, बुद्ध, महावीर तीर्थंकर।
ने ज्यों तम अजान में भटके लोगों को जीवन-भर।।

देकर ज्ञान प्रकाश सदा सद्ज्योतित पथ दर्शाया।
ज्योति पर्व को महाज्योति कर वरण ज्योति तन पाया।।

महाकाश से वे हैं ऐसी प्रेरक ज्योति बहाते।
जिसमें तमस मृत्यु में अटके जन जिवनामृत पाते।।

आज उन्हीं की स्मृति में हम दीपावली सजाके।
'तमसो मा ज्योति गर्मय' का श्रुति संदेश सुनाते।।

उठो आर्यजन! मिटे अमा -अज्ञान, वेदद्युति लाओ।
दो सत्यार्थ प्रकाश जगत् को दीपावली मनाओ।।

नगर, ग्राम हर घर आगन में शुचि-श्रुति - द्युति फैलाओ।
भ्रम, भटकन, तम तमस मिटेगा, दीपावली सजाओ।।

दयाशंकर गोयल
1554 डी. सुदामा नगर इंदौर
पिन-452009 (म.प्र.)

आर्य संस्थान और पीठ आर्य-संदर्भों को जुटायें

सद्गुण शुभकर्म शील स्वभाव युक्त मानव आर्य है। मानवजाति की प्राचीनतम पुस्तक वेद है, इसमें 'आर्य' के लिये अनेक संकेत हैं। **"कृण्वन्तो विश्वं आर्यं"** बनाए विश्व में सब मानवों को आचरण से श्रेष्ठ। यों कहें प्रत्येक मनुष्य हो न्यायकारी, दयालु, निर्विकार, अभय, पवित्र आदि। आर्य कोई जाति विशेष नहीं है। वेद के अनुरूप सत्य अर्थ का प्रकाश करने वाला ग्रन्थ है सत्यार्थ प्रकाश। इसका समुल्लास अष्ट सृष्टि उत्पत्ति संबंधी है। त्रिविष्टप-तिब्बत धरती पर सबसे ऊँची जगह है। यहाँ सबसे पहले वनस्पति प्राणी एवं मानव उत्पन्न हुआ। महर्षि दयानंद संकेत करते हैं अष्टं समुल्लास में कि कर्म श्रेष्ठ मानव यानी **'आर्य'** हिमालय के उत्तरी भाग तिब्बत से हिमालय के दक्षिण में बस गये। अभी (अपगणस्थान) अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश बर्मा (ब्रह्म-म्यांमार) मालदीव, श्रीलंका आदि हिमालय का दक्षिणी क्षेत्र हैं। 'आर्य' के बारे में भारत की संस्कृत प्राकृत पालि तमिल असमी कश्मीरी आदि सब भाषाओं के ग्रन्थों में जहाँ आर्य शब्द आया है वह किस अर्थ में है? इसका संकलन हो। भारत के पड़ोसी देश 9 है, इनकी भाषाओं में भी सर्वेक्षण कराकर संकलन किया जाये। दूर देश व महाद्वीपों की भाषाओं में जो संदर्भ मिलें वे संकलित किये जाएं।

यह निश्चित है कि इसके लिए भारत पड़ोसी देश व दूर देश के वैदिक विद्वानों की टोली बनायी जाये। जो आपस में किसी विश्व व्यापी तंतु- बेवसाइट के माध्यम से जुड़ी होवे। हर दिन एक दूजे से इनकी बातचीत होती रहे। इस शोधकार्य का संचालक संगठन हो 'सार्वदेशिक विद्यार्य सभा'। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा व इससे जुड़ी हुई अनेक राष्ट्रों की भारत में प्रान्तों की भी सभाएं हैं। इनकी विद्या शाखाएँ हैं। डी.ए.वी. प्रबंध समिति है, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है, विश्वेश्वरानंद शोध संस्थान आदि हैं। भारत एवं देशों के विश्वविद्यालय शिक्षामंडल आदि हैं। इनमें इतिहास समाजशास्त्र राजनीति शास्त्र आदि में भ्रम प्रचलित है कि भारत में 'आर्य' बाहर से आये थे। अनेक पुस्तकें हैं जो इसी भ्राँति को प्रतिवर्ष ही नये-नये छात्रों को परोसती रहती है। ये संदर्भ में संकलित करने होंगे। त्रिविष्टप (तिब्बत) भारत आदि के आर्य गोमाँस नहीं खाते थे, न सोमरस नामक कोई मादक पेय पीते थे। पर छात्रों को हर वर्ष कपट का शिकार बना रहे हैं। ऐसे सभी संदर्भ तो संकलित होंगे ही।

आर्ष पाठविधिमें कहे पाठ्य ग्रन्थों को ही लें। ऋग्वेद का दायित्व एक से अधिक आर्य विद्वानों को दिया जा सकता है जैसे 5 को जिम्मा दिया। अथर्ववेद का दायित्व तीन विद्वानों को। शतपथ ब्राह्मण के लिए 8 तय करने पड़ेंगे। पूर्वमीमांसा के लिये भी अधिक विद्वान चाहिएँ। आयुर्वेद के सुश्रुत चरक आदि के लिये भी एक से अधिक विद्वान तय करने पड़ सकते हैं। पाठविधि में बताये कुछ आर्ष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। तो पांडुलिपि संग्रहालयों में खोजना होगा। जैसे साम ब्राह्मण, सांख्य पर भागुरि कृत भाष्य, पूर्वमीमांसा?... कृत भाष्य, वेदान्त पर... कृत भाष्य। अंगिरा भारद्वाज कृत 'धनुर्वेद संहितायें' भी उपलब्ध नहीं हैं, त्वष्टा और दैवज्ञकृत वस्तु शास्त्र भी नहीं है। यास्ककृत काव्यालंकार भी नहीं मिलता है।

आर्ष ग्रन्थों के बारे में ऋषि संकेत करते हैं "दो हज़ार ग्रन्थों को प्रमाण मानता हूँ" तो वो दो हज़ार ग्रन्थ कौन से हैं जो महर्षि दयानंद के अनुसार आर्ष हैं। आर्ष पाठविधि के ग्रन्थों से 'आर्य' संबंधी संदर्भ, अनुपलब्ध का खोजन फिर संदर्भ संकलन तथा दो हज़ार का खोजन व संदर्भ संकलन अतीव महत्वपूर्ण कार्य हैं। इस कार्य में कई सैकड़ों ऋषि भक्त विद्वानों को होना अनिवार्य है। संस्कृत आर्षग्रन्थ मूलतः हैं। भारत की कालजयी (क्लासिकल) भाषाओं में अर्धमागधी प्राकृत पालि आदि भी हैं। इन भाषाओं में आर्ष विचार के अनुकूल ग्रन्थ खोजे जायें 'आर्य' के संदर्भ जानने को। साथ ही भारत की कश्मीरी पंजाबी, लक्षद्वीपी तमिल अंडमानी, असमी नगाभाषा आदि में तलाशें जायें। अगले चरण में भारत के पड़ोसी देश अफगानिस्तान, पाकिस्तान, मालदीव, श्रीलंका, बांग्लादेश, बर्मा (म्यांमार), भूटान, नेपाल, तिब्बत की भाषाओं में आर्य सन्दर्भ का भी संकलन कराते चलें। ये सब देश आर्यावर्त में आ जाते हैं। विनायक नरहरि (याने विनोबा0 भावे ने 1959 ई. की कश्मीर यात्रा में इन दसदेशों की जनता से जनता को जोड़ने वाला 'अ.ब्र. श्री महासंघ' बनाने की प्रेरणा की थी।

अरब से कोरिया तक 'भारतखण्ड' के सब देशों की जो भाषाएं हैं उनमें भी आर्य संदर्भ संकलन हो। पूरे एशिया (जंबूद्वीप) के लिये भी, विश्वस्तर पर भी। सार्वदेशिक विद्यार्य सभा से विश्व स्तरीय जम्बूद्वीप भारतखंड आर्यावर्त स्तर के संदर्भपीठ जुड़े रहें। विभिन्न देशों में जहाँ जहाँ, आर्यप्रतिनिधि सभायें हैं। उन देशों में 'राष्ट्रीय स्तर के संदर्भ पीठ हों।' भारत में विभिन्न प्रदेशों के जैसे दिल्ली आर्य संदर्भ पीठ बनते चले।

पंडित राम स्वरूप,
स्वाध्याय सुख, गणेश गुटीर
(बिजली घर के सामने)
हाथी भाटा अजमेर-305001

☞ पृष्ठ 9 का शेष

'समर्पित व प्रेरक जीवन...

व धारण करने की शिक्षा व प्रेरणा देता है। सौभाग्य से स्वामी अनुभूतानन्दजी की एक आर्य मिशनरी मुंशी महाशय कृष्णचन्द्र, जो पहले मुंशी कालेखा के नाम से जाने जाते थे, भेंट हुई। भेंट में मुंशी जी ने युवक ठाकुरसिंह की सामाजिक व शिक्षा की स्थिति जानने के बाद इन्हें विद्याध्ययन की प्रेरणा की। **उस समय के सामाजिक वातावरण एवं दलित परिवार होने के कारण आपने निराशा के स्वरों में मुंशीजी से कहा कि मुझे कौन पढ़ाएगा? मुंशीजी ने आपको उत्साहित करते हुए कहा कि आप निश्चय कीजिए, आपको मैं पढ़ाऊँगा। उनके सहमत होने पर मुंशीजी ने आपको भाषा का आरम्भिक ज्ञान करा दिया और आगे पढ़ने की व्यवस्था भी कर दी।** आपने संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थ लघुकौमुदी के अध्ययन से आरम्भ किया। मुंशीजी आपको आर्थिक सहायता प्रदान करते थे। आप अध्ययन के लिए आर्य समाज के एक शीर्षस्थ स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती जी के पास भी गए। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के अनुसार **आप उच्च कोटि के तितिक्षु थे। जब आप स्वामीजी से पढ़ने के लिए पहुँचे थे, उस समय आप वस्त्र नहीं पहनते थे, आपकी उस समय की वेशभूषा टाट का एक कौपीन होता था तथा टाट का ही एक अंगोछा रखा करते थे।** हमारे चरितनायक स्वामी अनुभूतानन्द जी ने सिरसा, फगवाड़ा–कपूरथला, जगरांवां–लुधियाना, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, लाहौर और तातारपुर–होशियापुर आदि स्थानों पर शिक्षा प्राप्त की। **आर्य समाज की सेवा, वेदों का प्रचार व प्रसार तथा दलित बन्धुओं की शिक्षा द्वारा उन्नति को आपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इसी उद्देश्य की पूति के लिए आप जिये और अल्प आयु में ही आपका अवसान हो गया।**

स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी के **अनुसार गुरु–सेवा की भावना आप में उत्कर्ष को प्राप्त थी। जगरांवां में सभी गुरुओं को आपने अपनी सेवा व व्यवहार से अपने वश में किया हुआ था। यहा एक बार आपने एक अध्यापक को कहा कि आप सावधान रहें और अपनी जन्मगत जाति का परिचय किसी को न दें।** यहाँ से चलकर आप होशियारपुर में दातापुर स्थित वैरागियों के मन्दिर के अन्तर्गत संचालित संस्कृत पाठशाला में अध्ययन करने हेतु पहुँचे। दातापुर के लोग आर्य समाज के विरोधी थे। वे न तो यहाँ आर्य समाज के उपदेश आदि होने देते थे न ही आर्य समाज का मन्दिर बनने देते थे। पाठशाला के विद्यार्थी भी इसी मानसिकता के थे। एक बार पाठशाला में पढ़ाते हुए कक्षा के अध्यापक पण्डितजी ने कहा कि उनके प्रयासों से आर्य समाज वहाँ समाज–मन्दिर स्थापित करने में सफल नहीं हुआ और न कभी होगा। इसका हमारे स्वामी अनुभूतानन्द जी ने विरोध किया और पण्डितों को कहा कि आप का कथन सत्य नहीं है। **आर्य एक बार यदि निश्चय कर लें तो वह कार्य अवश्यमेव होता है। उन्होंने अभी निश्चय ही नहीं किया होगा। इस पर अध्यापक पण्डित जी बोले, तो आप ही आर्य समाज मन्दिर बनवा कर दिखा दें। स्वामी जी ने चुनौती स्वीकार कर ली और गम्भीर मुद्रा में बोले कि मैं ही इसका निश्चय करता हूं। इसके साथ पाठशाला व अपने अध्ययन का परित्याग कर दिया। इस प्रतिज्ञा के बाद स्वामी जी ने दातापुर के एक बरसाती खड्ड के किनारे अपना आसन जमाया। रात–दिन वहीं रहे।** केवल शौच या भिक्षा के लिए कुछ समय के लिए आस–पास जाते थे और शेष समय वहीं मौन रहते थे। यदि कोई आ गया तो उससे चर्चा करते थे। **साधना व तप से चमत्कार हुआ और एक भूमिधर राजपूत प्रभावित हुआ। स्वामीजी के पास आकर उसने पूछा कि स्वामी जी कोई सेवा बताईये। स्वामीजी ने अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि उन्हें थोड़ी भूमि चाहिए जहाँ समाज–मन्दिर बनवा कर वेद व धर्म प्रचार कर सकें। राजपूत बन्धु ने उन्हें भूमि प्रदान करा दी। तत्पश्चात स्वामी जी ने भिक्षा आरम्भ कर उस भूमि पर समाज मन्दिर व एक कुआँ भी बनवा दिया।** यह घटना आर्य समाज के सभी अनुनायियों का आह्वान कर रही है कि स्वामी जी से प्रेरणा ग्रहण कर इसी प्रकार चुनौतियों को स्वीकार करते हुए उन्हें पूरा करो। व्यवहार से ही बात बनेगी, बातों व व्याख्यानों से कुछ अधिक न होगा।

इसके बाद भ्रमण करते हुए स्वामीजी होशियापुर के गढ़दीवाला स्थान पर पहुँचे जहाँ के लोगों से, वहाँ आर्य समाज है या नहीं, पूछने पर लोगों ने आपको अपशब्द कहे। **कुछ समय बाद स्वामीजी ने अपनी मर्यादा के अनुसार वहीं जमकर गीता पर कथा–उपदेश करना आरम्भ कर दिया। कथा कई मास चली। लोगों पर कथा का उत्तम प्रभाव हुआ जिससे अनेक लोग वैदिक धर्मी बन गए।** दान व धनसंग्रह कर स्वामीजी द्वारा भूमि खरीदी गई और कालेज पक्ष के लाला देवीचन्द जी की प्रार्थना पर उसकी रजिस्ट्री दयानन्द ऐंग्लो–वैदिक कालेज के नाम करके उसे कालेज के अधिकारियों को समाज व पाठशाला भवन निर्माण के लिए सौंप दिया। यहाँ से स्वामीजी आदमपुर द्वाबा आए। यहाँ समाज मन्दिर के निर्माणार्थ भूमि उपलब्ध थी, उस भूमि में एक कुआँ भी था। स्वामीजी ने धनसंग्रह कर यहाँ समाज मन्दिर बनवा दिया। यहाँ मन्दिर निर्माण में स्वामीजी के शिष्य विमलानन्द जी ने उनको पूरा सहयोग किया। 'आर्य' मासिक पत्रिका के वैशाख, सन् 1942 के लेख में स्वामी स्वतन्त्रनंद जी ने उनके व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए कहा है कि **स्वामीजी का शरीर का रंग अत्यन्त काला था किन्तु हृदय अत्यन्त धवल था। दलितों के लिए उनके हृदय में अपार करूणा विराजती थी।** स्वामी जी ने सारी आयु कहीं व्याख्यान नहीं दिया और न कहीं कोई शास्त्रार्थ ही किया। केवल लोगों में बातचीत के द्वारा प्रचार किया। इस प्रकार उपदेशात्मक व लिखित प्रचार न कर स्वामीजी ने मूकभाव से प्रचार कर हजारों रुपयों की सम्पत्ति समाज के कार्यों के लिए प्राप्त की और अनेक विद्यार्थियों को विद्यार्जन कराकर स्वावलम्बी तथा समाज का उपयोगी अंग ही नहीं बनाया अपितु उन्हें आर्य समाज से जोड़कर आर्य समाज व वेद प्रचार की नींव को सुदृढ़ किया। इन सब गुणों के साथ–साथ स्वामीजी का स्वभाव शान्त व निरभिमानी था तथा वह अपने संकल्पों के पालक व धनी थे। आपका देहान्त 8 अप्रैल, 1941 को 40 वर्ष की आयु में आदमपुर–द्वाबा में हुआ।

दलित वर्ग के बालकों की परिस्थितियाँ एवं समस्याएँ स्वामीजी को कुछ करने को प्रेरित करती थीं। आपने दलितोद्वार के क्षेत्र में दलित बालकों के विद्याध्यन का कार्य जी–जान से किया। **मृत्यु से पूर्व आपने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को बताया था कि भिक्षा से लगभग पचास हजार रुपये इकट्ठे करके उन्होंने दलितों की शिक्षा पर लगाए थे। स्वामीजी ने दलितों की शिक्षा के लिए कोई संस्था खड़ी नहीं कि अपितु बालकों की आवश्यकता, अभिरूचि व क्षमता के अनुसार उपयुक्त शिक्षण संस्था में अपने व्यय से उनकी शिक्षा की व्यवस्था की। स्वामीजी के प्रयासों से अनेक दलित बन्धुओं ने बी.ए., एम.ए. व मैट्रिक किया, कुछ वैद्य बने और कुछ संस्कृत के अध्यापक बने।** आपने शिक्षित दलित बन्धुओं की आजीविका का भी प्रबंध किया।

स्वामी जी के जीवन से अनुभव होता है कि आप उच्च श्रेणी के ईश्वरोपासक भी अवश्य भी थे। जो गुण उन्होंने धारण किए हुए थे, वह उच्च श्रेणी के ईश्वरोपासक को ही प्राप्त होते हैं। जीवन का लक्ष्य, धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है। हम अनुभव करते हैं कि स्वाजी जी ने जैसा जीवन व्यतीत किया तथा इस जीवन में उनके जो क्रियमाण व संचित कर्म बने, उससे उनका परलोक निश्चित रूप से कल्याणप्रद रहा होगा। **स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने अपने समय में उन पर लेख लिख कर उन्हें अमर कर दिया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द के लेखों का पुनरूद्वार आर्य समाज के प्रख्यात विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु ने स्वसम्पादित पुस्तक इतिहास दर्पण में संकलित व प्रकाशित करके उन लेखों के चरित नायकों व आर्यों को अमर कर दिया। इस कार्य के लिए आर्य जगत् इन दोनों विद्वानों का सदैव ऋणी व कृतज्ञ रहेगा।** इन्हीं की सामग्री से यह प्रेरण ादायक जीवन का विषय बन सका। हमारा अनुभव है कि व्यक्ति जैसे ग्रन्थों का स्वाध्याय करता है, वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। हम आर्य बन्धुओं को महर्षि दयानन्द के सभी ग्रन्थों के साथ दिवंगत आर्य समाज के त्यागी, तपस्वी, बलिदानी, धर्मनिष्ठ, वीर, साहसी, उपदेशक, प्रचारकों के साहित्य व जीवन का अध्ययन व स्वाध्याय करने का अनुरोध करते हैं जिससे वे भी उन्हीं के मार्गानुगामी बनें और आर्य समाज के उद्देश्य, आध्यात्मिक क्रान्ति द्वारा विश्व कल्याण तथा पक्षपात रहित सर्वजनहिताय वैदिक धर्म–समाज व्यवस्था के निर्माण व पूर्ति में सहयोग करें।

196, चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः 09412985121

****

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 23-24 /10/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

महात्मा हंसराज स्कूल पंचकूला में वेद प्रचार

आर्य समाज महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल, सैक्टर-6, पंचकूला (हरियाणा) के द्वारा पर्यावरण की शुद्धि के लिए नवरात्रों के पहले दिन सैक्टर-20 के पार्क में देवयज्ञ हवन का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् श्री रमेश चन्द जीवन जी (भूतपूर्व प्राचार्य डी.ए.वी. कॉलेज, सैक्टर-10, चण्डीगढ़) ने की। उन्होंने अपने भाषण में महर्षि देव दयानन्द सरस्वती द्वारा बताये पंच महायज्ञ नित्य करने की प्रेरणा दी और कहा यज्ञ संसार की नाभि है।

इस यज्ञ में स्थानीय विभिन्न समाजों से आर्य भाई -बहनों ने सैकड़ों की संख्या में भाग लिया। हंसराज पब्लिक स्कूल के अभिभावकों और बच्चों ने इस कार्यक्रम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। कार्यक्रम में आर्य कुमार सभा, सैक्टर-20 तथा आर्य समाज सैक्टर-6, पंचकूला की वीरांगना बहनों ने ईश्वर भक्ति के भजन प्रस्तुत किए।

कार्यक्रम में स्थानीय विभिन्न डी.ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्य व शहर के गणमान्य प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे।

अन्त में आर्य समाज हंसराज पब्लिक विद्यालय, सैक्टर-6, पंचकूला की प्रधाना श्रीमती जया भारद्वाज जी ने रमेश चन्द जी, बहन अंजु आहुजा, सैक्टर वासियों तथा अभिभावकों के साथ अपने सहयोगी साथियों का हृदय से बहुत-बहुत धन्यवाद किया।

शान्ति पाठ और प्रसाद-वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रो. कथूरिया हुए साहित्य मण्डल, श्री नाथ द्वारा पुरस्कृत

राजस्थान के अग्रणी साहित्यक-सांस्कृतिक-शैक्षिक प्रतिष्ठान साहित्य-मण्डल ने-हिन्दी लाओ : देश बचाओ' समारोह के अवसर पर भावनगर विश्वविद्यालय, (गुजरात) के पूर्व हिन्दी विभागध्यक्ष एवं प्रोफेसर डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया को 'श्री मनोहर कोठारी सम्मान' से सम्मानित करते हुए गयारह हजार रूपये की सम्मान राशि के साथ अभिनन्दन पत्र, प्रशस्ति पत्र, श्रीनाथ जी की स्वर्णिम आभा की प्रतिमा, शाल, अंगवस्त्र एवं श्री फल भेंट किये। उन्हें यह सर्वोच्च सम्मान उनकी विद्वत्ता एवं समर्पित हिन्दी सेवा के लिए श्रीनाथ मंदिर के मुखिया श्री नरहरि ठाकर एवं निष्पादान अधिकरी ने एक भव्य समारोह में प्रदान किया।

संस्था के प्रति आभार व्यक्त करते हुए डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया ने कहा कि वे इस सम्मान को ज्ञानपीठ से भी बड़ा पुरस्कार-सम्मान मानते हैं क्योंकि ये सम्मान राजनीति से हटकर व्यक्ति को उसके गुणों और योग्यता के आधार पर प्रदान किये जाते हैं। इसके लिए वे साहित्य मण्डल श्री नाथ द्वारा के प्रधानमंत्री एवं वयोवृद्ध कर्मठ हिन्दी सेवी श्री भगवती प्रसाद देवपुरा के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं तथा प्राणपण से हिन्दी सेवा का व्रत लेते हैं। उन्होंने कहा कि वे आगामी वर्ष से इतनी ही राशि संस्था को दान देंगे, ताकि उनकी माता श्रीमती कृष्णा देवी कथूरिया की स्मृति में संस्था किसी सुयोग्य विद्वान को एक और पुरस्कार प्रदान कर सके।

यज्ञ समिति झज्जर ने मनाया अभिनन्दन समारोह

झज्जर. यज्ञ समिति के तत्वावधान में महर्षि दयानंद, महाशयरतीराम आर्य के संयोजकत्व में यज्ञ-भजन-प्रवचन-अभिनन्दन समारोह हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ। बच्चों ने बड़ी श्रद्धा से हवन सम्पन्न कराया। श्रीमती सोनिया एवं श्री मुकेश आर्य मुख्य यजमान रहें। भट्टी गेट मौहल्ले के सैकड़ो बच्चों ने समाज में सौहार्दपूर्ण वातावरण की कामना की पूर्ति के लिए हवनकुण्ड में आहुतियां प्रदान की। जिला झज्जर की समस्त आर्य समाजों के कोषाध्यक्ष श्री जयकिशन जी आर्य मुख्य अतिथि रहें। उन्होंने बच्चों से ईश्वर की उपासना कर; माता पिता तथा गुरुजनों के चरणों का स्पर्श मातृभाषा में हस्ताक्षर गोदुग्ध का सेवन अन्धविश्वास-पाखण्ड गाली-गलोच, से दुराव; कोल्ड ड्रिंकस आदि हानिकारक पदार्थों का सेवन करने का संकल्प कराया। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. धर्मवीर जी आर्य, खेडी आसरा ने आर्य समाज के दस नियमों को राजनैतिक-उन्माद निवारण की औषध बताया।

ओ.एस.डी.ए.वी. कैथल में हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया

ओ.एस.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल कैथल में हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया। इस अवसर पर तीसरी से दसवीं कक्षा के छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसके अन्तर्गत कथा-वाचन, मुहावरा-लेखन, स्लोगन लेखन, दोहा-गायन, भाषण प्रतियोगिता एवं प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पाँचवी कक्षा के छात्रों ने हिन्दी वर्णमाला पर आधारित एक लघु नाटिका प्रस्तुत की जो विशेष आकर्षण का केन्द्र रही। छठी कक्षा के छात्रों ने स्वरचित कविताओं के माध्यम से हिन्दी भाषा को भारत के भाल की बिन्दी बताया। छात्रों द्वारा भक्तिकाल से लेकर आधुनिक काल के हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के बारे में बताने के साथ-साथ कविता के नवरसों से भी परिचित कराया। समापन समारोह में राष्ट्र भाषा हिन्दी के महत्व के बारे में बताते हुए विद्यालय की प्रधानाचार्या एवं क्षेत्रिय निदेशिका श्रीमति सुमन निझावन ने कहा कि राष्ट्र भाषा किसी भी देश का गौरव होती है और यह देश की राष्ट्रीय एकता का साधन होती है। जिस प्रकार राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान व राष्ट्रीय गीत सम्माननीय है उसी प्रकार से राष्ट्र भाषा भी सम्मान की अधिकारिणी है अतः प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि व अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी का सम्मान करे।

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष : 26388830-32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी